एम.ए.एच.आई. -02

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. -02 - विश्व इतिहास (1815-1917)
(राष्ट्रवाद,पूँजीवाद एवं समाजवाद) - 4

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-4

इकाई संख्या	पृष्ठ संख्या
इकाई 16	
बाल्कन में उथल-पुथल व उत्तेजना (बाल्कन युद्ध) 1878-1914	5–18
इकाई 17	
चर्च और राज्य के संबंध	19–45
इकाई 18	
टर्की मे समाज सुधार व युवतुर्क आन्दोलन	46–60
इकाई 19	
अमेरिका में काले लोगों का इतिहास	61–76

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार
निदेशक, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं
पुस्तकालय, नई दिल्ली

प्रो. एस.पी. गुप्ता
इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम
विश्वविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

प्रो. के.एस. गुप्ता
इतिहास विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

डा. श्रीमती कमलेश शर्मा
इतिहास विभाग, कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. बी.आर. ग्रोवर
पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास
अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

प्रो. जे.पी. मिश्रा
पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

डा. बृजकिशोर शर्मा
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग कोटा
खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

डा. याकूब अली खान
इतिहास विभाग कोटा खुला
विश्वविद्यालय, कोटा

पाठ्यक्रम निर्माण दल

श्री मोहन लाल शाहू
इतिहास विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, कोटा

श्री के.सी. माथुर
राजकीय महाविद्यालय
भीलवाड़ा (राज.)

डा. अमीनुद्दीन
इतिहास विभाग
डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

पाठ्यक्रम प्रभारी एवं सम्पादक

डा. (श्रीमती) कमलेश शर्मा,

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)एम.के.घड़ोलिया
निदेशक(**अकादमिक**)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी अधिकारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - मार्च 2011 MAHI-02/ISBN No.-13/978-81-8496-261-1

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई-16

बाल्कन में उथल-पुथल व उत्तेजना (बाल्कन-युद्ध) 1878-1914

इकाई की रूपरेखा

इकाई- 160 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 बाल्कन क्षेत्र

16.3 पूर्वी समस्या एवं बाल्कन राज्य

16.4 बर्लिन कांग्रेस एवं बाल्कन संकट

16.4.1 बाल्कन विद्रोह

16.4.2 रूस व आस्ट्रिया की प्रतिक्रिया

16.4.3 रूस-टर्की संघर्ष

16.4.4 सेनस्टीफेनो की संधि

16.4.5 यूरोपीय राज्यों में संधि की प्रतिक्रिया

16.4.6 बर्लिन सम्मेलन

16.4.7 समीक्षा

16.5 प्रथम बाल्कन युद्ध-कारण

16.5.1 बाल्कन संघ का गठन

16.5.2 युवा तुर्क आन्दोलन

16.5.3 यूरोप में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार

16.5.4 टर्की सुल्तान के अत्याचार व प्रशासनिक भ्रष्टाचार

16.5.5 आस्ट्रिया द्वारा बोस्निया व हर्जीगोविना पर अधिकार

16.5.6 रूस का कूटनीतिक सहयोग

16.5.7 इटली का ट्रिपोली पर अधिकार

16.5.8 मेसीडोनिया में सुधारों की मांग

16.6 घटनाक्रम

16.7 लन्दन संधि

16.8 द्वितीय बाल्कन युद्ध-कारण

16.8.1 लन्दन सन्धि

16.8.2 अल्बानिया का निर्माण

16.8.3 बल्गेरिया का अंहकार

16.8.4 आस्ट्रिया द्वारा सर्बिया का विरोध

16.8.5 मेसीडोनिया का प्रश्न
16.9 घटनाक्रम
16.10 बुखारेस्ट की संधि
16.11 संधि की समीक्षा
16.12 परिणाम
16.12.1 अपार धन-जन की हानि
16.12.2 तुर्की साम्राज्य का पतन
16.12.3 सर्बिया का शक्तिशाली होना
16.12.4 रूस की यूरोप में सक्रियता
16.12.5 सर्बिया व आस्ट्रिया की शत्रुता
16.12.6 बाल्कन संघ का विघटन
16.12.7 बाल्कन क्षेत्र के ईसाइयों को राहत
16.12.8 सैनिकवाद का प्रबल होना
16.12.9 बाल्कन क्षेत्र के ईसाइयों को राहत
16.12.10 प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठ-भूमि तैयार होना
16.13 सारांश
16.14 बोध प्रश्न
16.15 सन्दर्भ ग्रन्थ

16.0 उद्देश्य

इस इकाई को पड़ने के बाद आप-

बाल्कन क्षेत्र व बाल्कन राज्यों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेगें ।

पूर्वी समस्या क्या थी, यह जान पायेगें ।

बाल्कन क्षेत्र में प्रभाव को लेकर रूस व टर्की के संघर्ष के बारे में जानकारी। प्राप्त कर सकेंगे ।

उन आधारभूत तत्वों के बारे में जान सकेंगे, जिनकी वजह से बर्लिन कांग्रेस आयोजित की गई ।

प्रथम बाल्कन युद्ध के कारणों की जानकारी प्राप्त कर सकेगें ।

द्वितीय बाल्कन युद्ध के लिए उत्तरदायसी परिस्थितियों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे ।

बाल्कन युद्धों के परिणामों को समझ सकेंगें ।

प्रथम महायुद्ध की पृष्ठ-भूमि के बारे में जान सकेंगे ।

16.1: प्रस्तावना:-

यूरोप के इतिहास में बाल्कन राज्यों की समस्या ने सम्पूर्ण विश्व की राजनीति को प्रभावित किया हैं । 17 वीं शतब्दी के अन्त में टर्की एक शक्तिशाली व विशाल साम्राज्य के रूप में उभर के आया था । टर्की व बाल्कन राज्यों के मध्य लगातार कई वर्षो तक संघर्ष चलता रहा ।

16.2 बाल्कन क्षेत्र

बाल्कन शब्द तुर्की भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ हैं, "पहाड़" । इस प्रायद्वीप में कई छोटे-छोटे पहाड़ स्थित हैं । पहाड़ों के कारण ही यह क्षेत्र छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त है । इस क्षेत्र के अन्तर्गत अधिकांशतया पूर्वी यूरोप के राज्य आते हैं । प्रमुख बाल्कन राज्य हैं, बोस्निया हर्जीगोविना, यूनान, बलगेरिया, सर्बिया, मान्टीनिग्रो, रूमानिया आदि ।

16.3 पूर्वी समस्या व बाल्कन राज्य:-

टर्की द्वारा इन बाल्कन राज्यों का लगातार शोषण किया जाता रहा । इस शोषण के खिलाफ इन राज्यों ने टर्की के विरूद्ध समय-समय पर आवाज़ उठायी । रूस बाल्कन में, अपना प्रभाव रखना चाहता था, ताकि उसे अन्य देशों से आक्रमण का खतरा न रहे व टर्की को नष्ट कर देना चाहता था, परन्तु इग्लैण्ड व अन्य मित्र राष्ट्र रूस के प्रभाव को रोकने के लिए टर्की साम्राज्य के अस्तित्व को बनाये रखना चाहते थे । इन नीतियों को लेकर समय-समय पर टर्की व बाल्कन राज्यों में संघर्ष हुआ । यूरोपीय देशों ने समय-समय पर बाल्कन क्षेत्र व टर्की के मतभेदों को दूर करने का प्रयास किया । इस क्षेत्र से सम्बन्धित इसी समस्या को बाल्कन संकट के नाम से जाना जाता है इतिहास में यह पूर्वी समस्या के नाम से प्रसिद्ध है ।

जान मर्ले ने इस संकट की व्याख्या करते हुए लिखा है "परस्पर विरोधी जातियों, धर्मो एंव पृथक स्थानों के संघर्ष से उत्पन्न जटिल, असाध्य और परिवर्तनशील समस्या को पूर्वी समस्या के नाम से जाना जाता है ।" (मेरियट)

मिलर ने इस सम्बन्ध में लिखा है- "यूरोप में तुर्की साम्राज्य के क्रमश: विघटन से उत्पन्न खाई को भरने की समस्या को पूर्वी समस्या कहते हैं । "

16.4: बर्लिन कांग्रेस एवं बाल्कन समस्या-1878

बाल्कन राज्यों, टर्की और रूस के आपसी तनावों के कारण ही बर्लिन कांग्रेस का आयोजन किया गया । रूस, टर्की को कमजोर बनाना चाहता था, परन्तु यूरोपीय राष्ट्र रूस के प्रभाव को बाल्कन क्षेत्र में रोकने के लिए टर्की को शक्तिशाली रखना चाहते थे । इन राज्यों में इंग्लैण्ड; फ्रांस प्रमुख थे । बर्लिन कांग्रेस का मुख्य उद्देश्य इसी से सम्बन्धित था ।

16.4.1: बाल्कन विद्रोह :- (1875-77)

1875 में बोस्निया व हर्जीगोविना के कृषकों ने तुर्की के विरूद्ध विद्रोह कर दिया । उनके पड़ौसी राज्य बल्गेरिया, मान्टीनीग्रो, व सर्बिया के स्लाव भी विद्रोह में सम्मिलित हो गए।

बाल्कन क्षेत्र में संकट की स्थिति हो गई । आस्ट्रिया, रूस व जर्मनी ने मिलकर इस समस्या पर विचार किया । इस समय तक इन तीनों राष्ट्रों का त्रिराष्ट्र संघ बन चुका था । तीनों की सलाह से आस्ट्रिया के विदेश मंत्री एन्द्रासी ने 30 दिसम्बर 1875 को टर्की के सुल्तान के पास एक पत्र भेजा जिसे "एन्द्रासी नोट" कहा जाता है इस पत्र में विद्रोहियों, को शान्त करने के लिए टर्की से आवश्यक सुधार करने व यूरोप में शान्ति बनाये रखने के लिए कहा । सुल्तान ने एन्द्रासी नोट की सारी बातें मान ली, लेकिन विद्रोही संतुष्ट नहीं हुए । अप्रैल 1876 में बल्गेरिया भी विद्रोह में शामिल हो गया ।

16.4.2: रूस व आस्ट्रिया की प्रतिक्रिया:-

इस बिगड़ती हुई स्थिति को देखकर आस्ट्रिया व रूस के विदेश मंत्री एन्द्रासी व गार्शकाव बर्लिन में बिस्मार्क से मिले और समस्या के समाधान के लिए "बर्लिन स्मृति-पत्र" तैयार किया । इस स्मृति-पत्र के द्वारा टर्की के सुल्तान से कहा गया-

1. दो माह के लिए युद्ध बन्द कर दें ।
2. इस अवधि में आवश्यक सुधारों को क्रियान्वित करें ।
3. टर्की प्रशासन द्वारा बोस्निया व हर्जीगोविना के बन्दियों को पुन: बसाने का प्रबन्ध किया जाए।
4. ईसाई विद्रोहियों को कुछ समय तक अस्त्र-शस्त्र की अनुमति दी जाएं ।
5. तुर्की सेनाएं अपने पूर्व के निश्चत स्थानों पर रखी जाएं ।

अन्त में टर्की को चेतावनी दी गई कि युद्ध विराम अवधि में बड़ी शक्तियों की इच्छा के अनुकूल सफलता नहीं मिली, तो कठोर कदम उठाने पड़ेगें" (लेंगर-यूरोपीयन एलाइन्सेज एण्ड एलाइन्मेन्ट) इस समृति-पत्र का इग्लैण्ड ने समर्थन नहीं किया । ब्रिटिश प्रधानमन्त्री डिजरैली ने रूसी राजदूत सुवालाव से कहा- "इग्लैण्ड के साथ इस प्रकार का अपमान जनक व्यवहार किया गया है, जैसाकि मान्टीनीग्रो के साथ किया जाता है ।" (टेलर) इग्लैण्ड़ की इस सहानुभूति से टर्की का साहस बढ़ गया और उसने बल्गेरिया के हजारों ईसाईयों को मौत के घाट उतार दिया । 30 जून को सर्बिया व एक जुलाई को मान्टीनीग्रों ने टर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी ।

16.4.3: टर्की व रूस का संघर्ष:-

रूसी राजदूत शुवालाव व ब्रिटिश विदेशमंत्री डरबी द्वारा लन्दन पूर्व संधि (मार्च-1877) का प्रारूप तैयार किया गया, लेकिन टर्की ने 9 अप्रैल 1877 को लन्दन की पूर्व संधि को अस्वीकार कर दिया । इस प्रकार बाल्कन समस्या के शान्ति पूर्ण हल का यह अन्तिम प्रयास भी असफल हो गया । जब रूस ने देखा कि यूरोपीय राज्यों के समझौते के प्रयत्न निरर्थक हो गए हैं तो उसने विवश होकर स्लाव जातियों की रक्षा के लिए 24 अप्रैल, '1877 को टर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । इस युद्ध में रूस का राजनैतिक स्वार्थ निहित था ।

रूसी सेनाओं ने रूमानिया क्षेत्र से होकर 22 जून, 1877 को डेन्यूब पार कर ली और बाल्कन की पहाड़ियों की ओर बढ़ने लगी । मान्टीनीग्रों व रूमानिया टर्की के विरूद्ध पहले ही युद्ध

घोषित कर चुका था । टर्की सेना का नेतृत्व उस्मान पाशा कर रहे थे । 19 जुलाई को रूसी सेना ने शिपका घाटी का अधिकार कर लिया । टर्की ने अपनी सेना को प्लेवना में रोक लिया । रूमानिया के प्रिन्स केरोल के नेतृत्व में रूस व रोमानिया की सेना ने प्लेवना का घेरा डाला । मेरियट ने लिखा हैं, कि "यह घेरा पॉच महीने तक चला । उस्मान पाशा के नेतृत्व में टर्की की सेना ने वीरता से किले की रक्षा की, किन्तु 10 दिसम्बर को प्लेवना का पतन हो गया "(दी ईस्टर्न क्वश्चन- पृष्ठ 335) रूसी सेनाएं टर्की की राजधानी की ओर बढ़ने 'लगी, परन्तु इग्लैण्ड़ की चेतावनी के कारण कासंसटेन्टी नोपॉल पर अधिकार नहीं किया । 5 जनवरी को सोफीया पर अधिकार करने के बाद सेनाएं 18 जनवरी 1878 को एडियानोपॉल पहुँच गयी ।

16.4.4: सेनस्टीफेनो सन्धि (मार्च-1878)

आस्ट्रिया व इग्लैण्ड़ दोनों ही रूसी प्रभाव को रोकना चाहते थे । 3 मार्च 1878 को रूसी सेनापति इगनातेव ने रूसी शर्तो के आधार पर टर्की के सुल्तान अब्दुल हमीद को सेनस्टीफेनों नामक स्थान पर सन्धि के लिए बाध्य किया । इस सन्धि की प्रमुख शर्ते थीं-

1. टर्की ने सर्बिया मान्टीनीग्रो व रूमानिया की स्वतन्त्रता मान ली ।
2. बोस्निया व हर्जीगोविना में प्रस्तावित सुधारों की क्रियान्विती का वचन दिया ।
3. टर्की से रूस ने 1410000000 रूबल हर्जाने की मांग की ।
4. बल्गेरिया को स्वायत्तता राज्य की मान्यता दी गयी और उसकी सीमाओं में वृद्धि कर बृहत् बल्गेरिया का निर्माण किया गया ।

16.4.5: यूरोपीय राज्यों में सन्धि की प्रतिक्रिया:-

वृहत् बल्गेरिया का निर्माण इस संधि का महत्वपूर्ण अंग था । आस्ट्रिया व ब्रिटेन ने इसका विरोध किया । ब्रिटिश प्रधानमंत्री बीकन्सफील्ड ने लार्ड सभा में कहा था- "सेनस्टीफेनों संधि ने यूरोप में आटोमन साम्राज्य को समाप्त कर दिया है । उसने बृहत् बल्गेरिया का निर्माण किया जिसमें कई ऐसी जातियां हैं, जो बलगार नहीं हैंद्रद्र संधि की समस्त शर्तो का प्रभाव यह होगा, कि काला सागर उसी प्रकार रूस की झील बन जायेगा, जैसे केस्पियन सागर है । (मेरियट-दी ईस्टर्न क्वश्चन- पृष्ठ 339) आस्ट्रिया ने भी इस संधि का विरोध किया और रूसी सेनापति इगनातेव से "बृहत् बल्गेरिया को विघटित करने की मांग की और पश्चिमी बाल्कन क्षेत्र में आस्ट्रिया की प्रधानता स्वीकार करने को कहा "(टेलर-दी स्ट्रगल फार मास्ट्रीइन यूरोप)

16.4.6. बर्लिन सम्मेलन- 13 जून से 13 जुलाई 1878:-

यूरोपीय देशों ने सेनस्टीफेनों की संधि पर पुन: विचार के लिये सम्मेलन की मांग की । रूस को ब्रिटेन तथा आस्ट्रिया के विरोध, बिस्मार्क द्वारा आस्ट्रिया के विरूद्ध उसका समर्थन न करने तथा अपनी बिगड़ती हुई स्थिति के कारण सेनस्टीफेनों की संधि को यूरोपीय कांग्रेस के समक्ष पुन: विचार हेतु प्रस्तुत करने के लिये तैयार होना पड़ा । आमन्त्रण का कार्य बिस्मार्क को

सौंपा गया । पैरिस संधि पर हस्ताक्षर करने वाले सभी राज्यों को सम्मेलन में आंमत्रित किया गया।

13 जून 1878 को बर्लिन में सम्मेलन आयोजित किया गया । प्रमुख प्रतिनिधियों में थे- ब्रिटेन के प्रधानमंत्री डिजरैली व विदेश मंत्री सैलिसबरी, आस्ट्रिया-विदेशमंत्री एन्द्रासी और जर्मनी में आस्ट्रियन राजदूत काउन्ट राजदूत काउन्ट कार्लोपी रूस, विदेश मंत्री गार्शकाव व ब्रिटेन ने रूसी राजदूत शूवालाव, फ्रांस विदेशमंत्री वाडिगटन, इटली-काउण्ट कोर्ती । कुछ इतिहासकार भी इसमें सम्मिलित हुए, जिनमें डब्ल्यू एन. मेडलीकाट व विलियम लेंगर मुख्य थे ।

संधि की शर्ते:

1. बल्गेरिया को तीन भागों में बांटा गया:-
   मुख्य बल्गेरिया को स्वायत्तता दी गयी ।
   पूर्वी रोमेलिया को अर्द्ध स्वायत्तता दी गया ।
   मेसीडोनिया पर टर्की का पूर्ण प्रभुत्व रखा गया ।
2. आस्ट्रिया को बोस्निया व हर्जीगोविना पर प्रशासन का अधिकार दिया गया । नोवी बाजार पर उसका नियन्त्रण स्थापित हुआ ।
3. इंग्लैण्ड को नौ-सैनिक अड्डा बनाने हेतु साइप्रस दिया गया ।
4. रूस को बेसारेबिया (यूरोप) और बाटुम (एशिया) दिया गया ।
5. सर्बिया को स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया ।
6. मान्टीनीग्रो व रूमानिया को स्वतन्त्र राज्य की मान्यता दी गई ।

16.4.6: समीक्षा:-

सम्मेलन के अध्यक्ष बिस्मार्क ने "ईमानदार दलाल" की भूमिका अच्छी तरह निभाई, लेकिन इतिहासकार टेलर के अनुसार सम्मेलन के निर्णयों का बहुत कम प्रभाव पड़ा । ब्रिटिश प्रधानमंत्री बीकन्सफील्ड ने इंग्लैण्ड लौटने पर घोषणा की - "मै सम्मान-सहित शान्ति लाया हूं"। इतिहासकार जी0 पी0 गूच (हिस्ट्री ऑफ माडर्न यूरोप) के अनुसार "उच्च राजनैतिक क्षेत्र में बर्लिन कांग्रेस का यह विशिष्ठ प्रभाव पड़ा कि रूस जर्मनी से विमुख हो गया ।" ।

बाल्कन समस्या के समाधान में यह कांग्रेस असफल रही । बाल्कन राज्य और अधिक असन्तुष्ट हो गये । डेविड थामसन (यूरोप सिंस नेपोलियन) के अनुसार- "बर्लिन कांग्रेस के निर्णयों का विशिष्ट परिणाम यह निकला कि इससे प्रत्येक राज्य पहले की अपेक्षा अधिक असन्तुष्ट हो गया" । बल्गेरिया की राष्ट्रीय भावनाओं को कुचल दिया गया । रूमानिया से बेसारिबिया छिन लिया और यूनान की एपीरस, थैसेली व इटली की मांग को स्वीकार नहीं किया गया । टर्की में ब्रिटिश राजदूत लेयर्ड ने स्पष्ट संकेत दिया था- "मुझे इस अभागे देश में आगामी वर्षो में अनेक उपद्रव व रक्तपात होने का पूर्वाभास है" । (मैडलीकाट) वास्तव में, यह आंशका सही निकली । बीसवीं सदी के आरम्भ होते ही 1912- 13 में पूर्वी यूरोप में बाल्कन युद्ध आरम्भ हो गये । सच पूछा जाय तो बाल्कन युद्ध के बीज इसी सम्मेलन के निर्णयों में बो

दिये थे । फिर भी यूरोप में शक्ति सन्तुलन व शान्ति स्थापना की दृष्टि से यह सम्मेलन एक महत्वपूर्ण प्रयास था । लगभग तीन दशक तक विश्व को महायुद्ध की विभिषका से बचाये रखा।

बाल्कन युद्ध:-

बाल्कन युद्ध पूर्वी समस्या का मुख्य भाग था । बर्लिन कांग्रेस के बाद यह निश्चित था कि टर्की व बाल्कन राज्यों के मध्य संघर्ष होना है । इन ईसाई राज्यों ने टर्की अत्याचारों के खिलाफ अपना एक संघ बनाने का प्रयास किया । आरम्भ में इन्हें आपसी मतभेदों के कारण सफलता नहीं मिली, लेकिन 1912 में इन्हें संघ बनाने में सफलता मिली । बाल्कन क्षेत्र में दो प्रमुख बाल्कन युद्ध लड़े गये ।

16.5: प्रथम बाल्कन युद्ध-कारण

16.5.1.: बाल्कन संघ का गठन

इस संघ के निर्माण का मुख्य उद्देश्य टर्की के विरूद्ध युद्ध करना था । प्रारम्भ में बाल्कन राज्य टर्की के विरूद्ध संगठित होने में सफल नहीं हुये । परन्तु 1908 के युवा तुर्क आन्दोलन ने इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । युवा तुर्को की तुर्कीकरण की नीति से ईसाई लोगों का जीवन संकट ग्रस्त हो गया । अपने प्राणों की रक्षा हेतु वे एक दूसरे की शरण लेने लगे । ईसाई राज्यों में पुन: एकता की लहर दौड गयी । बल्गेरिया यूनान व सर्बिया ने अपने आपसी मतभेदों को भुलाकर एक होने को तैयार हो गये । इस संघ के निर्माण में रूस के राजदूत नेवलूडाफ एवं हार्टविग की महत्वपूर्ण भूमिका रही । इतिहासकार फे (ओरीजन्स ऑफ दी वल्ड वार) ने लिखा है- "इनके सक्रिय सहयोग के बिना बाल्कन संघ का निर्माण सम्भव नहीं था" ।

13 मार्च 1912 को बल्गेरिया व सर्बिया के मध्य संन्धि हो गयी, जिसके अनुसार- दोनों राज्यों या किसी एक पर कोई तीसरी शक्ति आक्रमण करती हैं, तो उसका मिलकर मुकाबला करेंगे ।

गुप्त रूप से यह निश्चित किया गया कि उचित अवसर देखकर टर्की पर आक्रमण किया जावे । विजयी होने पर मेसीडोनिया का विभाजन इस प्रकार किया जाए, कि दोनों को समान लाभ हो ।

एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता एवं- सैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति का वचन दिया ।

29 मई 1912 को यूनान व बल्गेरिया के मध्य रक्षात्मक संधि हुई । युद्ध होने की स्थिति में बल्गेरिया ने तीस हजार सैनिक व यूनान ने एक लाख बीस हजार सैनिक देने का आश्वासन दिया ।मान्टीनीग्रो ने बिना किसी संधि के युद्ध के समय सहयोग का आश्वासन दिया । इस प्रकार सर्बिया यूनान बल्गेरिया व मान्टीनीग्रो ने मिलकर बाल्कन संघ का गठन किया ।

यह संघ रूस की कूटनीतिक विजय थी । रूसी विदेश मंत्री साजानोव ने बल्गेरिया व सर्बिया संधि के संबंध में कहा था, कि "इस संधि में न केवल तुर्की बल्कि आस्ट्रिया के विरूद्ध भी युद्ध के बीज विद्यमान हैं । इसके द्वारा स्ताव राज्य पर रूस का प्रभुत्व स्थापित हो गया है, क्योंकि सभी मामलों में रूस को ही विवाचक बनाया गया है । (फे)

16.5.2.: युवा तुर्क आन्दोलन: (1908)

इस आन्दोलन के द्वारा युवा तुर्की ने तुर्कीकरण की नीति के द्वारा अपने अधीन ईसाईयों पर अपनी सभ्यता लादने का प्रयास किया । वे उन पर अमानुषिक अत्याचार व हत्या कर रहे थे । बाल्कन राज्यों ने इन अत्याचारों के खिलाफ अपना एक संघ बनाया और यूरोप से टर्की को उखाड फैंकने के लिए संगठित होकर युद्ध करने का निश्चय किया ।

16.5.3:यूरोप में राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार:-

19 वी शताब्दी यूरोप में राष्ट्रीय शताब्दी मानी जाती है । टर्की के अत्याचारों सें व्यथित होकर बाल्कन के इसाई स्वतन्त्र होने का प्रयास करने लगे सर्बिया व यूनान 1878 से पहले ही स्वतन्त्र हो चुके थे ।

16.5.4:टर्की सुल्लान के अत्याचार व प्रशासनिक भ्रष्टाचार:-

टर्की का सुल्तान दकियानूसी एवं प्रतिक्रिया वादी था अत: वह ईसाई जनता पर मनमाने अमानुषिक अत्याचार करता रहता था । वह अत्याचारों के स्थान पर सुधार नहीं करना चाहता था । सुल्तान के प्रशासन व सेना में भ्रष्टाचार व्याप्त था । धार्मिक नेता धर्म के नाम पर ईसाईयों पर जुल्म करते थे । यहां की ईसाई जनता इस भ्रष्टाचार से उकता गयी और टर्की की दासता से मुक्त होने के प्रयास होने लगे ।

16.5.5.: आस्ट्रिया का बोस्निया व हर्जीगोविना पर अधिकार- 1908

आस्ट्रिया ने युवा तुर्क आन्दोलन के समय अवसर देख कर बोस्निया व हर्जीगोविना को पूर्णतया हस्तगत कर लिया इन राज्यों पर बर्लिन कांग्रेस' के द्वारा आस्ट्रिया को प्रशासन का अधिकार दिया गया था । अन्य बाल्कन राज्य भी इसी प्रकार अवसर का लाभ उठाना चाहते थे।

16.5.6:रूस का कूटनीतिक सहयोग:-

बाल्कन राज्यों द्वारा टर्की के अत्याचारों के विरूद्ध किसी ने आवाज नहीं उठायी । केवल रूस ही ऐसा देश था, जिसे बाल्कन की ईसाई जनता के प्रति सहानुभूति थी । वह अपने आपको ग्रीचर्च के अनुयायी ईसाईयों का संरक्षक समझता था । वह टर्की के विरूद्ध बाल्कन राज्यों को विद्रोह के लिये प्रोत्साहन देता रहता था । सैनिक सहायता भी करता था । बाल्कन संघ का निर्माण भी रूस के सहयोग से ही हुआ था । यद्यपि इसमें रूस के राजनैतिक स्वार्थ निहित थे।

16.5.7.: इटली का ट्रिपोली पर अधिकार:-

1911 ईसवीं में इटली ने अपने युद्धपोत भेज कर ट्रिपोली पर अधिकार कर लिया । इटली की इस विजय से टर्की के सुल्तान की दुर्बलता स्पष्ट हो गयी । सुल्तान की इस कमजोरी ने बाल्कन राज्यों की आक्रमण के लिय उकसाया ।

16.5.8: मेसीडोनिया में सुधारों की मांग:-

मेसीडोनिया की सीमा का निर्धारण नहीं किया गया था, अत: प्रारम्भ में इस राज्य ने बाल्कन राज्यों में आपसी वेमनस्य उत्पन किया । लेकिन यहां के ईसाईयों पर टर्की के बढ़ते हुए जुल्मों के कारण बाल्कन राज्यों को आपस में मिलने और संघर्ष के लिये प्रोत्साहित किया । बाल्कन राज्यों ने मेसीडोनिया में सुधारों की मांग की, लेकिन यूरोपीय शक्तियों ने टर्की पर विशेष दवाब नहीं डाला और यूरोपीय राज्यों द्वारा बाल्कन राज्यों को यूरोप में यथा स्थिति बनाये रखने की चेतावनी दी गयी । शक्तियों ने सुधारों का केवल आश्वासन दिया । इससे बाल्कन राज्य अधिक उग्र हो गये और टर्की पर आक्रमण कर दिया ।

16.6: घटनाक्रम:-

8 अक्टूबर 1912 को मान्टीनीग्रो ने टर्की पर आक्रमण कर दिया । 18 अक्टूबर को टर्की ने बल्गेरिया के विरूद्ध युद्ध घोषित कर दिया । यूनान ने भी उसी दिन बल्गेरिया के पक्ष में युद्ध आरम्भ कर दिया । उसने सैलोनिका पर अधिकार कर लिया तथा एजियन सागर के कई द्वीपों को अपने अधीन कर लिया । सर्बिया भी युद्ध में सम्मिलित हो गया । टर्की पराजित होने लगा । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि टर्की का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा । परन्तु यूरोप की शक्तियों ने टर्की को बचाने के लिए प्रयास आरम्भ कर दिये । फ्रांसीसी प्रधानमंत्री पोंइनकेर और लन्दन के विदेशमंत्री एडवर्डग्रे के प्रयासों से शान्ति स्थापना के लिये लन्दन में सम्मेलन आयोजित किया गया ।

16.7: लन्दन सन्धि:-

30 मई 1913 को लन्दन सन्धि सम्पन्न हुई और प्रथम बाल्कन युद्ध का अन्त हुआ। इस सन्धि की शर्ते थी:-

टर्की ने काले सागर पर स्थित मीडिया से लेकर एजियन सागर पर स्थित एनोस के पश्चिम का सम्पूर्ण क्षेत्र व क्रीट बाल्कन राज्यों को दे दिया जिसे वे आपस में बांट लें ।

यूनान को क्रीट का द्वीप व दक्षिणी मेसीडोनिया का क्षेत्र मिला ।

वीड़ के राजकुमार के नेतृत्व में अल्बानिया का स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया गया, लेकिन उसकी सीमाएं निर्धारित नहीं की गयी ।

कुस्तुनतुनिया पर टर्की का अधिकार बना रहा ।

लेकिन इस संधि से न तो यूरोपीय शक्तियां सन्तुष्ट थीं और न ही बाल्कन राज्य । इस असन्तोष का विस्फोट द्वितीय बल्कन युद्ध के रूप में हुआ ।

16.8: द्वितीय बाल्कन युद्ध- कारण:-

लन्दन सम्मेलन में सबसे अधिक विरोध सर्बिया व बल्गेरिया ने किया । बड़ी शक्तियों ने इन दोनों ही राज्यों को समझा कर संधि करायी, लेकिन यह संधि अल्पकालीन रही । 29 जून 1913 को. बल्गेरिया पर सर्बिया पर आक्रमण करके द्वितीय बाल्कन युद्ध की शुरूआत कर दी ।

16.8.1: लन्दन संधि:-

इस संधि से सभी बाल्कन राज्य असन्तुष्ट थे । इस संधि में विजय में प्राप्त प्रदेशों में बंटवारा न करके बाल्कन राज्यों को आपस में लड़ने के लिए खुला छोड दिया । प्रदेशों के बंटवारे को लेकर वे आपस में लडने लगे ।

16.8.2: अल्बानिया का निर्माण:-

आस्ट्रिया तथा इटली द्वारा स्वतन्त्र अल्बानिया के निर्माण की हट के कारण झगड़ा पैदा हो गया । यह राज्य सर्बिया को सबसे बुरा लगा क्योंकि इस राज्य के निर्माण से सर्बिया की एड्रियाटिक सागर तक पहुंचने की आशा समाप्त हो गयी । इस राज्य में सर्बिया को स्थल-शक्ति से घिरा हुआ देश बना दिया । इससे सर्बिया की जनता क्रुद्ध हो गयी ।

16.8.3: बल्गेरिया का अहंकार:-

सर्बिया का कहना था कि टर्की को पराजित करने में सभी बाल्कन देशों ने समान भूमिका निभायी थी । अत: टर्की भू-भाग का भी समुचित विभाजन होना चाहिए । इसके विपरीत बल्गेरिया की मान्यता थी, कि उसने सबसे बड़ी लड़ाईयां लडीं । इस बात का उसे अहंकार हो गया था । इसी अहंकार से उसने जून के अन्त में यूनान व सर्बिया पर आक्रमण कर दिया ।

16.8.4: आस्ट्रिया द्वारा सर्बिया का विरोध:-

सर्बिया का आस्ट्रिया ने सबसे अधिक विरोध किया, क्योंकि उसे आंशका थी कि वह रूस के सम्पर्क में न आ जाये । एड्रियाटिक सागर तक वह न पहुंचे, इसीलिए स्वतन्त्र अल्बानिया का निर्माण किया । इसी से सर्बिया व बल्गेरिया में मनमुटाव हुआ, जिसका परिणाम दूसरा बाल्कन युद्ध हुआ ।

16.8.5: मैसीडोनिया का प्रश्न:-

यह युद्ध का तात्कालिक कारण था, बल्गेरिया व सर्बिया ने मेसीडोनिया में अपने प्रभाव क्षेत्रों का निर्णय पूर्व में ही कर दिया था । जिसके अनुसार बल्गेरिया को इसका बड़ा भाग मिलना था और सर्बिया को एड्रियाटिक समुद्रीतट लेकिन अल्बानिया के निर्माण ने सर्बिया की आशा धूमिल कर दी । अब वह मेसीडोनिया में अधिक से अधिक क्षेत्र प्राप्त करके अपनी क्षतिपूर्ति करना चाहता था, लेकिन बल्गेरिया ने इस ओर कोई सुविधा नहीं देनी चाही । सर्बिया ने बल्गेरिया के विरूद्ध यूनान से समझौता कर लिया और रूमानिया से भी सहयोग का आश्वासन प्राप्त कर लिया । रूस द्वारा इन राज्यों में समझौते के लिए किए गए प्रयास सफल नहीं हुए ।

16.9 घटनाक्रम:-

29 जून 1913 को बल्गेरिया ने अचानक सर्बिया व यूनान पर आक्रमण कर दिया ।10 जुलाई को रूमानिया और 12 जुलाई को टर्की ने बल्गेरिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी ।

टर्की ने एड्रियानोपोल पर अधिकार कर लिया । बल्गेरिया की निरन्तर पराजय से आस्ट्रिया को चिन्ता हुई और उसने सन्धि के लिए दवाब डाला ।

16.10: बुखारेस्ट की सन्धि:- (10 अगस्त 1913)

31 जुलाई 1913 को बाल्कन राज्यों ने युद्ध विराम की घोषण कर दी । और 10 अगस्त को बुखारेस्ट की संधि पर हस्ताक्षर कर दिये । जिसके अनुसार:-

सर्बिया को उत्तरी व मध्य मेसीडोनिया तथा नवीबाजार का पूर्वी भाग मिला ।

यूनान को एपिरस, जैनिना, दक्षिणी मैसीडोनिया एवं एजियन सागर का छोटा सा बन्दरगाह मिला।

रूमानिया को दोबुजा मिला, जिसमें सिलिस्ट्रिया का दुर्ग भी था ।

बल्गेरिया को पूर्वी मेसीडोनिया और एजियन सागर का छोटा सा बन्दरगाह मिला।

कान्सटेन्टिनोपॉल की संधि के अनुसार टर्की को एड्रियानोंपॉल नगर और थ्रेस का अधिकांश भाग मिला ।

16.11: सन्धि की समीक्षा:-

इस संधि से बल्गेरिया को मैसीडोनिया का बहुत बड़ा भाग छोड़ना पड़ा । और बृहत् बल्गेरिया की महत्वाकांक्षा को त्यागना पड़ा । 10 लाख से अधिक बल्गार लोगों को विदेशी सत्ता के अन्तर्गत जाना पड़ा । बल्गेरिया के लिए यह युद्ध हानिकारक सिद्ध हुआ । इस संधि का सबसे महत्वपूर्ण तत्व यह है, कि उसे बड़े राज्यों की स्वीकृति के लिये प्रस्तुत नहीं किया गया । और बाल्कन प्रदेशों ने अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का परिचय दिया ।

16.12: परिणाम:-

16.12.1: अपारधन जन की हानि:-

इतिहासकार मेरियट के अनुसार- "दोनों बाल्कन युद्धों मे 245000000 पौण्ड खर्च हुए और 348000 व्यक्ति मारे गये अथवा घायल हुये । बलोरिया की 140000 सेना नष्ट हुयी और 90000000 पौण्ड खर्च हुये । इसी प्रकार टर्की के एक लाख सैनिक मरे व अस्सी लाख पौंड खर्च करने पड़े ।"

16.12.2: टर्की साम्राज्य का पतन:-

इन युद्धों से टर्की साम्राज्य नष्ट प्राय: हो गया ।" टर्की के पास केवल फान्सटेन्टीनोपॉल, एड्रियानोपॉल और कुछ आस-पास का क्षेत्र बचा रहा । उसके साम्राज्य का 5/6 भाग छिन गया ।- (लिप्सन- यूरोप इन दी नाइनटीन्थ एण्ड टूवन्टियथ सेन्चूरीज)

16.12.3: सर्बिया का शक्तिशाली होना:-

सर्बिया को दूसरे बाल्कन युद्ध से विस्तृत भू-भाग मिला वह बृहत् सर्बिया का सपना देखने लगा । इतिहासकार फे ने लिखा है, "उसमें यह आत्म विश्वास हो गया, कि वह विशाल

सर्बिया का स्वपन पूरा कर सकेगा । "सर्बिया का क्षेत्र बढ़कर 18650 वर्गमील से 33891 वर्गमील हो गया ।

16.12.4: रूस की यूरोप में राजनीतिक सक्रियता:-

इंग्लैण्ड व फ्रांस से 1907 में मैत्री करने के बाद से ही यूरोप में रूस सक्रिय हो गया था । मोरक्को प्रश्न में भी वह सक्रिय रहा । विलियम द्वितीय- (जर्मनी) की साम्राज्यवादी उत्कंठा 'पर उसने प्रहार किया । सर्बिया के माध्यम से आस्ट्रिया को भी परेशान करना आरम्भ कर दिया ।

16.12.5: सर्बिया आस्ट्रिया की शत्रुता:-

सर्बिया की शक्ति से आस्ट्रिया चिन्तित था । 1914 मे हंगरी के प्रधानमंत्री हिस्सा ने आस्ट्रिया सरकार को एक विवरण प्रस्तुत करतें हुए लिखा था, "बाल्कन युद्धों और बुखारेस्ट की संधि ने आस्ट्रीया व हंगरी के लिये एक असहनीय स्थिति पैदा कर दी जब तक स्थिति में सुधार नहीं होता स्थाई शांति नहीं रह सकती" आस्ट्रीया का प्रधान सेनापति कोनराड आरंभ से ही सर्बिया पर आक्रमण की मांग कर रहा था ।

16.12.6: बाल्कन संघ का विघटन:

टर्की के विरूद्ध 1912 ई0 में बाल्कन राज्यों के मध्य जो संधि हुई थी वह द्वितीय बाल्कन युद्ध की शुरूआत के साथ स्वत: ही समाप्त हो गयी । इस प्रकार बाल्कन संघ का विघटन हो गया ।

16.12.7: बल्गेरिया में बदले की भावना बढ़ना

इस युद्ध के बाद बल्गेरिया को सबसे अधिक असंतोष हुआ । सर्बिया, यूनान और रोमानिया ने उसका बहुत बड़ा भाग छीन लिया था । टर्की के समर्थन के कारण वह इंग्लैण्ड से नाराज था । रूस से भी बल्गेरिया असन्तुष्ट था । इस युद्ध के बाद उसका झुकाव आस्ट्रिया व जर्मनी की ओर अधिक हुआ और वह धुरी राष्ट्रों का सहयोगी बन गया ।

16.12.8: सैनिक वाद की प्रबलता:

बुखारेस्ट की संधि से आस्ट्रिया, जर्मनी व बल्गेरिया पूरी तरह असन्तुष्ट थे । युद्ध अवश्यम्भावी लग रहा था । रूस को भी युद्ध का आभास था । अत: सभी राष्ट्र अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने में जुट गये । सुरक्षा के लिये इसे आवश्यक माना । फ्रे के अनुसार "बाल्कन युद्ध का एक परिणाम यह हुआ कि इसके बाद सभी राज्यों ने अपने आर्मामेन्ट (शस्त्रास्त्रों) में वृद्धि करना आरंभ कर दिया जिसका प्रभाव यूरोप की शान्ति पर पड़ा व ट्रिपल एलाइन्स व ट्रिपल अंततः शक्तिशाली हो गये"

16.12.9: बाल्कन क्षेत्र में ईसाइयों को राहत:

अब तक इस क्षेत्र के ईसाई टर्की के अत्याचारों को पांच सदियों से सहन कर रहे थे । उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता नही थी । उनका शोषण होता था । इससे उन्हें मुक्ति मिली । यह महत्वपूर्ण कार्य बाल्कन राज्यों नें संगठित होकर बड़े राज्यों की सहायता के बिना ही सम्पन्न कर लिया ।

16.12.10: प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठ भूमि तैयार होना:

सर्बिया के साथ बल्गेरिया व आस्ट्रिया की शत्रुता बुखारेस्ट संधि से अधिक हुई । आस्ट्रिया के राजकुमार फर्डीनेन्ड की सराजेवो नगर में यात्रा के समय 28 जून 1914 को हत्या कर दी गयी । इसकी जिम्मेदारी आस्ट्रिया ने सर्बिया कर डाली । इसी घटना को लेकर प्रथम विश्व युद्ध की शुरूआत हो गयी । इस प्रकार बाल्कन युद्ध के मन मुटाव ने प्रथम महायुद्ध को निकट ला खडा किया ।

16.13: सारांश:

इकाई को पढ़कर आपने जाना कि :-

1. बाल्कन राज्यों व टर्की के अस्तित्व को बनाये रखने संबंधी यूरोपीय राष्ट्रों के विवाद पूर्वी समस्याओं की श्रेणी में आते हैं ।

2. बाल्कन राज्यों ने रूस की सहायता से टर्की को पराजित किया ।

3. बाल्कन प्रदेशों व टर्की के प्रति यूरोपिय राष्ट्रों के अलग-अलग दृष्टिकोण थे ।

4. सेनस्टीफेनो की संधि पर पुन: विचार के लिये 1878 में बर्लिन कांग्रेस का आयोजन किया गया जिसकी अध्यक्षता बिस्मार्क ने की । सम्मेलन एक माह तक चला ।

5. बर्लिन सम्मेलन से बाल्कन राज्य और अधिक असन्तुष्ट हो गये लेकिन ब्रिटेन इसे ससम्मान शान्ति बताया ।

6. बाल्कन युद्धों का बीजारोपण बर्लिन कांग्रेस में ही हो गया था ।

7. युवा तुर्क आन्दोलन ने तुर्कीकरण की प्रतिक्रिया तेज कर दी व ईसाई जनता पर अत्याचार किये । बाल्कन राज्यों ने टर्की से मुक्ति के लिये बाल्कन संघ का 1912 में गठन किया जिसमें सर्बिया, बल्गेरिया, यूनान व मन्टीनीग्रो सम्मिलित थे ।

8. टर्की एवं चार बाल्कन राज्यों के बीच 1912 में प्रथम बाल्कन युद्ध लडा गया । इसमें टर्की की पराजय हुई थी । लन्दन संधि के द्वारा युद्ध का समापन हुआ ।

9. लन्दन संधि (1913) के अनुसार प्राप्त क्षेत्रों के बंटवारे के विवाद एवं अन्य महत्वाकांक्षाओं को लेकर बाल्कन राष्ट्रों में आपस में युद्ध हुआ तो द्वितीय बाल्कन शुद्द कहलाता है ।

10. बाल्कन युद्धों के अपार धन जन की हानि हुई । बाल्कन संघ का विघटन हो गया । सर्बिया व बल्गेरिया में कट्टर शत्रुता हो गई । आस्ट्रिया ने बल्गेरिया का समर्थन किया । सर्बिया के अधीन सराजेवो नगर में आस्ट्रिया के राजकुमार फर्डीनेन्ड की हत्या (1914) हुई जो कि इसी

कट्टरता का परिणाम थी । इस प्रकार बाल्कन युद्धों ने प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की और यह युद्ध इसी क्षेत्र से शुरू हुआ ।

16.14: बोध प्रश्न:

1. पूर्वी समस्या से आप क्या समझते हैं । इस समस्या ने यूरोपीय राजनीति को किस प्रकार प्रभावित किया ।
2. सेनस्टीफेनो की संधि का वर्णन करिये । यूरोप के विभिन्न देशों में इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई।
3. बर्लिन कांग्रेस के निर्णयों की समीक्षा करिये ।
4. प्रथम बाल्कन युद्ध के कारणों की व्याख्या करिये ।
5. यह कहॉ तक सत्य है कि द्वितीय बाल्कन युद्ध के कारण 1913 की लन्दन संधि में ही निहित थे।
6. बाल्कन युद्धों के परिणामों को रेखाकिंत करिये ।

16.15: संदर्भ ग्रन्थ:

1. जी. पी. गूच- आधुनिक यूरोप का इतिहास (हिन्दी संस्करण)
2. एस.बी. फे - ओरिजन्स आफ दी वार
3. डबल्यू एल. लेंगर - यूरोपीयन एलाइन्सेज एण्ड एलाइनमेंटस 1871-1890
4. डी. हेरिस - ए डिप्लोमेटिक हिस्ट्री आफ दी बाल्कन क्राईसेस
5. जे. ए. आर. मेरियट - दी ईस्टर्न क्वश्चन
6. सी. डी. एम. केटलवी- आधुनिक काल का इतिहास (हिन्दी संस्करण)
7. डा. मधुरा लाल शर्मा- यूरोप का इतिहास (1870-1917)
8. सी. डी हेजन- मॉर्डन यूरोपियन हिस्ट्री
9. डबल्यू. एन. मेडलीकाट- बर्लिन कांग्रेस एण्ड आफ्टर
10. ब्रेडन बर्ग- फ्रोम बिस्मार्क टू दी ग्रेट वार

इकाई-17
चर्च और राज्य के सम्बन्ध

ईकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 चर्च का विकास

17.2.1 प्रारम्भिक ईसाई काल में चर्च का विकास

17.3 प्रारम्भिक ईसाई रोमन साम्राज्य में चर्च और सम्राट के संबंध

17.4 प्रारम्भिक मध्य युग में सम्राट व चर्च के संबंध

17.5 सामन्ती युग में सम्राट व चर्च के संबंध

17.6 चर्च व उत्तर मध्यकालीन राजतन्त्र

17.7 चर्च और राज्य के सम्बन्ध निरंकुशवाद के काल में

17.8 चर्च और उदार राज्य:

17.8.1 1801 ई. की धर्म सन्धि

17.8.2 कांग्रेस ऑफ वियना के पश्चात् राज्य व चर्च के सम्बन्ध

17.8.3 पोप और इटली के सम्बन्ध

17.8.4 जर्मनी में सभ्यता का संघर्ष

17.8.5 फांस के गणतन्त्र द्वारा कैथोलिक विरोधी नियम

17.8.6 आधुनिक युग में चर्च व राज्यों के सम्बन्ध

17.9 बोध प्रश्न

17.9.1 सन्दर्भ ग्रंथ

17.0 उद्देश्य:

इस ईकाई में हमारा उद्देश्य राज्य और चर्च के सम्बन्धों का एक संक्षिप्त इतिहास बताना है, इसके पश्चात् 1815 से लेकर 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक इन दोनों संस्थाओं के सम्बन्ध पर विस्तार से चर्चा की जायेगी । इस इकाई के पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बातों को स्पष्ट कर सकेंगे:-

1. चर्च क्या है, और इसका क्रमिक विकास कैसे हुआ ।
2. यूरोप में चर्च के विकास और उसकी सत्ता को लेकर भिन्न-भिन्न विचार धाराऐं ।
3. यूरोप के भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक युग में चर्च और राज्य के सम्बन्धों की भूमिका की चर्चा ।
4. कांग्रेस ऑफ वियना के पश्चात् चर्च और राज्य के सम्बन्ध और धार्मिक समझौते ।
5. चर्च और राज्य के सम्बन्धों का आज वास्तविक स्वरूप क्या है ।

17.1 प्रस्तावना:

चर्च ओर राज्य दो संस्थाऐं हैं और इनके बीच संतुलित सम्बन्ध बनाए रखना यूरोप के इतिहास में एक समस्या रही है । इसका मुख्य कारण ये है कि दोनों ही संस्थाएं समाज पर अपनी प्रभुसत्ता बनाए रखने का दावा करती रही हैं । इस समस्या का समाधान सैद्धान्तिक रूप से इस प्रकार किया गया है कि दोनों के कार्यक्षेत्र अलौकिक और लैकिक अलग-अलग कर दिये गये है अलौकिक (Spiritual) चर्च को दे दिया गया है और लौकिक (Temperal) राज्य को दे दिया गया है । वस्तुत: ये दोनों क्षेत्र एक दूसरे से बड़े धुले मिले हैं जिस प्रकार से मानवीय जीवन में शरीर और आत्मा को अलग-2 नहीं किया जा सकता । नीचे दिये हुवे चार्ट से विभाजन समझ सकते हैं ।

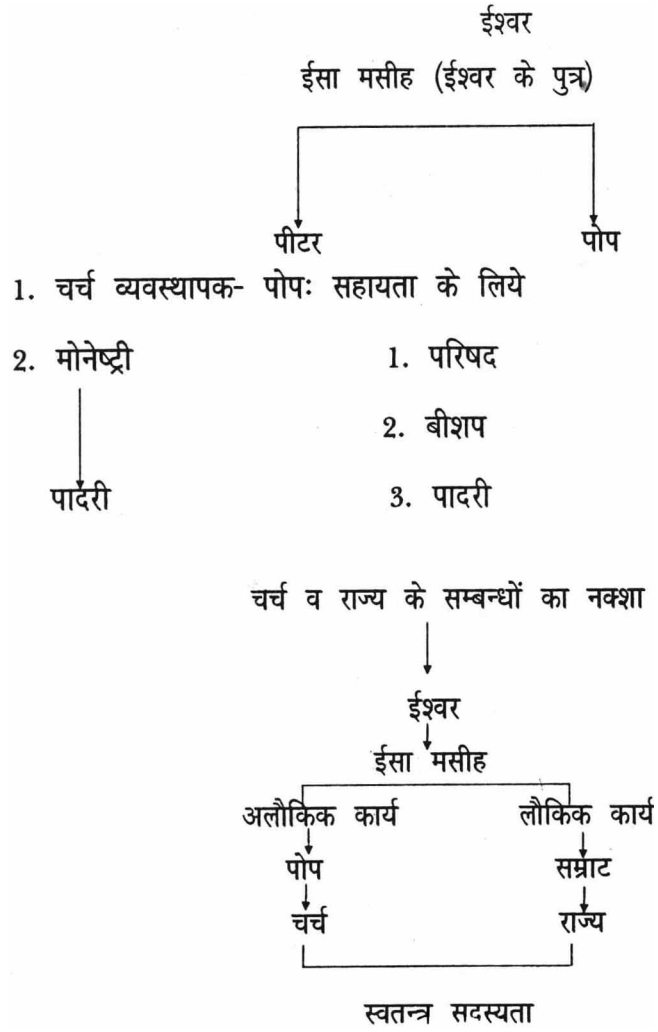

यद्यपि लौकिक व अलौकिक कार्य अलग-अलग कर दिये गये थे किन्तु ये विभाजन एक दूसरे की सीमा तक फैला हुआ है इसलिये दोनों संस्थाओं के बीच विवादों का होना स्वाभाविक है ।

चर्च आत्माओं के समूह का नाम ही नहीं है वह एक अनुष्ठान भी है । जिसके अपने सिद्धान्त और कार्यविधि भी है जो प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति को और समाज को और आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाओं को प्रभावित करती है । अपने कार्य को करने के लिये लौकिक साधनों का प्रयोग करता है । चर्च के दृष्टिकोण से अलौकिक क्षेत्र अपने उद्देश्यों की पूर्ति करते समय समस्त लौकिक क्षेत्रों पर भी नियंत्रण बनाने का दावा करता है । दूसरी ओर राज्य अपनी जन-संख्या की केवल भौतिक सुख समृद्धि से ही सम्बंधित नहीं है । नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र भी उसकी कार्य परिधि में आते हैं । इसलिए राज्य न केवल लौकिक क्षेत्र पर बल्कि समस्त सामाजिक, शैक्षणिक और अन्य गतिविधियों पर भी अपना अधिकार जताता है चाहे ये गतिविधियां नाम से धार्मिक नहीं, लेकिन विस्तृत क्षेत्र में अलौकिक अवश्य कहीं जा सकती हैं इन पारस्परिक दावों के कारण चर्च और राज्य में विवाद उत्पन्न है।

धार्मिक और राजनीतिक सत्ताओं के इन सम्बन्धों में भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-2 जगहों में इतिहास की एक लम्बी अवधि में भिन्न-2 रूप धारण किये जिनको मोटे-तौर से चार भागों में विभाजित किग्रा जा सकता है:

1. चर्च और राज्य की एकता जिसमें चर्च राज्य के अधीन रहा और राज्य के हितों और नीतियों की सेवा करता रहा ।
2. चर्च ओर राज्य की एकता जिसमें राज्य चर्च के अधीन रहा, और अध्यात्मिक सत्ता का एक साधन बना रहा ।
3. चर्च और राज्य के बीच समझौतों के द्वारा सम्बन्ध स्थापित किये गये और समझौते तभी हुए जब हर एक दल से अपने कुछ न कुछ अधिकार दूसरे को समर्पित किये इसके अन्तर्गत वे तमाम समझौते है जो आधुनिक इतिहास में भिन्न-भिन्न राज्यों के द्वारा किये गये ।
4. चर्च और राज्य का पृथकीकरण कर दिया गया और धार्मिक स्वतंत्रता स्थापित की गई।

17.2 चर्च:

चर्च के अधिकारों का अध्ययन करने से पूर्व चर्च की ऐतिहासिक उत्पति का अध्ययन करना उचित है । प्राचीन संसार में चर्च और राज्य के बीच किसी प्रकार का डूअलिज्म (Dualism) नहीं था, अर्थात् दोनों अलग-अलग नहीं थे । धर्म परम्पराओं का एक अभिन्न अंग था और राज्य का कार्य था । धर्म और राजनीतिक सत्ता एक ही शासक के हाथ में केन्द्रित थी। चर्च नाम की कोई स्वयंशासित संस्था नहीं थी और न कोई पुरोहित वर्ग था । जिसके पास विशेष तौर से कोई अलौकिक सत्ता हो । ईसाई धर्म के उदय से न केवल एक नया धर्म और चर्च बल्कि पहली वाली व्यवस्था से बिल्कुल नयी संस्था का उदय हुआ । उस समय यहूदी धर्म राष्ट्रीय धर्म था और यहूदीयों को ही अपने धार्मिक नियमों के आधार पर जीवन बिताने का अधिकार था । यहूदियों को इस बात की, छूट हासिल थी के वे पेगन (Pagan) धर्म की धार्मिक क्रियाओं के लिए बाध्य नहीं है, जिसका पालन रोमन शासन करते थे । जब ईसाई धर्म का उदय हुआ तो इन्होंने भी उसी परम्परा की और सुविधाओं की मांग की जो यहूदियों को प्राप्त थीं किन्तु ये सुविधाएं इसाईयों को नहीं दी गई । और इसाईयत को अवैधानिक धर्म

घोषित कर दिया गया । न्यायालय में अपराध को सिद्ध करने में इतना ही पर्याप्त माना जाता था कि कोई ये कह दे कि मैं ईसाई हूं । परिणाम स्वरूप अपने जन्म से पहली तीन शताब्दी तक इसाईयों को राज्य के नियमों का विरोध करना पड़ा और कई प्रकार के अत्याचार झेलने पड़े और ईसाई रहने की एक भारी कीमत चुकानी पड़ी ।

इन परिस्थितियों में चर्च ने अपना एक संगठन बनाया और ईसाईयों को एकता के सूत्र में बांधने के लिए अपने अध्यात्मिक, नैतिक और भौतिक साधनों का प्रयोग किया । चर्च को कई प्रतिबंधों और अत्याचारों के बावजूद जीवित रहने के लिए जो संघर्ष करना पड़ा उससे चर्च में अपनी अध्यात्मिक स्वतंत्रता का बोध हुआ और यह आत्म विश्वास जागा कि राज्य के विरोध के बावजूद भी बगैर किसी बाध्य सत्ता के जीवित रहा जा सकता है । इस प्रकार चर्च और राज्य की डई (Dnalism) स्थापित हुई और जो ईसाई रक्त से मजबूत हुआ ।

17.2.1 प्रारम्भिक ईसाई पद्धति:

यहूदियों और प्रारम्भिक ईसाइयों का राजनैतिक सत्ता और संस्थाओं के प्रति उदासीन दृष्टिकोण था । ईसा मसीह की निम्नलिखित शिक्षाऐं उस समय के ईसाइयों के लिए राजनैतिक मंत्र नहीं था। "जैसा सिज़र चाहे वैसा करो और ईश्वर की हुकुमत में वही करो जो ईश्वर चाहे ।" इस शिक्षा से ईसा मसीह भौतिक स्वार्थो से घृणा दर्शाते हैं क्योंकि वह ईश्वरीय राज की कल्पना कर रहे थे । ईसा मसीह की मृत्यु के बाद उनके शिष्य इसी इंतजार में रहे कि वो फिर लौटेगें और जिस ईश्वरीय राज का वादा किया था वह स्थापित करेगें । इसी अवधि में ईसाईयों ने अपने नेताओ से कहा कि वर्तमान राजनैतिक सत्ता के प्रति हमें समर्पित कर देना चाहिये चाहे वह कितनी ही बुरी क्यों ना हो । किन्तु इस समर्पण के कारण हम राज्य के उन कानूनों का पालन नहीं करेंगे जो ईश्वरीय कानूनों के विरूद्ध हो । इस प्रकार एक और राज्य के कुछ कानूनों का उल्लंघन किया और यही ईसाईयों का नैतिक कर्तव्य बन गया और विश्वास किया गया कि ये स्थिति ज्यादा समय तक नहीं रहेगी । उस समय प्रारम्भिंक ईसाइयों का केन्द्र बिन्दु उनका अपना समाज और चर्च था । उस समय का ईसाई समाज कोई ऐसा कार्यक्रम नहीं बना सकता था जिसमें वर्तमान की संस्थाओं में सामाजिक और राजनैतिक सुधार किये जा सके ये काम उन्होंने भविष्य के लिए छोड़ दिया ।

उस समय के ईसाईयों ने रोमन शासन से एक ही मांग की ओर वह थी सहिष्णुता । जिसका अर्थ था कि उनको ईसाई होने के नाते पीड़ित नहीं किया जाए और उनको जीवित रहने दिया जाए उनकी यह मांग इस सिद्धान्तों पर आधारित थी कि हर व्यक्ति को अपनी अन्तरआत्मा की आवाज के अनुसार पूजा करने का अधिकार हासिल है । उस समय की रोमन राजनैतिक संस्थाए ईसाई जीवन की आवश्यकताओं के प्रतिकूल थी । इसलिए कहा गया कि "कोई ईसाई सीज़र नहीं बन सकता और कोई सीज़र ईसाई न ही हो सकता" । किन्तु एक शताब्दी के बाद ही रोमन शासन ने ईसाइयत से समझौता कर लिया और रोमन सम्राट स्वयं ईसाई हो गया ।

17.3 प्रारम्भिक ईसाई रोमन साम्राज्य:

311 व 313 AD में रोमन सम्राट ने सभी धर्मो को सहिष्णुता प्रदान कर दी । इस सहिष्णुता का मुख्य कारण था कि साम्राज्य के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक ढांचे को ईसाइयत के साथ समझौता करके शक्तिशाली बनाया जाए क्योंकि उस समय का साम्राज्य अपने आन्तरिक विघटन के कारण और बर्बर जातियों के आक्रमण के कारण बहुत ही कठिन युग से गुजर रहा था ।

4थी शताब्दी के अन्त तक रोमन साम्राज्य का राज धर्म ईसाई घोषित कर दिया गया इसलिये अब पैगन धर्म अवैधानिक बन गया इस प्रकार क्रिश्चियन चर्च का एक नया युग प्रारम्भ हो गया ।

इससे पूर्व चर्च को पहले वाले शासन ने बहुत पीड़ित किया था और मान्यता भी प्रदान नहीं की थी । फिर भी चर्च स्वतंत्र रूप से अपने आंतरिक संगठन को विकसित करता रहा सम्राट ईसाइयों को मृत्यु दण्ड दे सकता था । किन्तु वे चर्च पर अपने कानून थोप नहीं सकता था । अब बदली हुई परिस्थितियों में सम्राटों ने इसाई धर्म पर अपनी कृपा की बौछार प्रारम्भ कर दी । कोन्सटेनटाइन ने चर्च को बड़ी जागीरें भवन इत्यादि प्रदान किये और चर्च को जो अनुदान मिले हुए थे उनको वैधानिक घोषित कर दिये उसने बीशप को यह अधिकार दिया कि वह रोमन नागरिकों को दास बना सकते हैं और कोई भी दल दीवानी अदालत से आना मुकदमा बीशप की अदालत में ले जाना चाहे तो उसको अनुमति दी । कोन्सटनटाइन के इन कार्यो ने ईसाई धर्म का इतिहास ही बदल दिया अब तक चर्च अपनी आय के लिए अपने अनुयायों के दिये नज़राने अथवा अपनी कृषि उपज का पहले प्रतिफल पर निर्भर करते थे अब स्थिति बदल गई है । चर्च को पोल टैक्स भी नहीं देना पड़ता था । तो चर्च को यह खतरा लगा किं वह अपनी स्वतंत्रता खो देगा और कहीं ऐसा ना हो कि वह रोमन राजनैतिक ढांचे में समो दिया जाए ।

रोमन शासन ने जो धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की इसका अर्थ वह नहीं है कि जैसाकि आज हम समझते हैं अर्थात् चर्च और राज्यों का अलग-अलग होना । इसके विपरीत इसका अर्थ यह था कि सभी धर्म राजनैतिक सत्ता के अन्तर्गत रहेगें ।

कोन्सटनटाइन और उसके ईसाई उत्तराधिकारियो ने (Conlifex maximum]) की उपाधि धारण कर ली जिसका अर्थ यह था कि वह सभी धार्मिक मामलों में निर्णय दे सकते हैं और नियम बना सकते हैं । ये उपाधि सम्राटों ने बाद में त्याग दी और रोमन बीशप (पोप) ने ग्रहण कर ली हर एक पोप (बीशप) चर्च के संविधान के अन्तर्गत पढ़ाता था और चर्च की व्यवस्था को चलाता था इस प्रकार चर्च बिशप के समझौतों पर आधारित था । वस्तुत: इन पादरियों में न तो कोई समानता थी न कोई समझौता था और वे इसाई धर्म की शिक्षाओं की ओर चर्च के अनुशासन की अपने-अपने ढंग से व्याख्या करते थे इस व्यवस्था को समाप्त करने के लिए, जिसमें कई विवाद खड़े कर दिये थे, और एकता को स्थापित करना बहुत कठिन हो गया था उस समय रोम के पादरियों ने अपनी श्रेष्ठता स्थापित की ओर 4 थी शताब्दी के मध्य के बाद सभी पश्चिमी देशों ने रोम की इस सत्ता को स्वीकार कर लिया रोम के पादरियों ने

अपने आपको पीटर और पाल का उत्तराधिकारी बताया और यह दावा किया कि हमें ही सबसे अच्छी ईसाई शिक्षा मिली है तथा सभी चर्चो को उसे स्वीकार कर लेना चाहिए । इस प्रकार से चर्च का अंतिम संविधान बना जिसमें तीन तथ्य प्रमुख थे । प्रथम धार्मिक शासक जिसकी संस्था समिति थी जिसको समस्त चर्च के कानून बनाने और धार्मिक मुद्दों को परिभाषित करने का अधिकार था । द्वितीय PATRIAR CHATES अर्थात बड़े-बड़े चर्चो पर बिशपों नियंत्रण तृतीय रोम के पादरी की सर्वोच्च सत्ता ।

इस संविधान के दो प्रमुख बिन्दु भी थे ।

प्रथम क्लर्जी (पादरी) जिसको पढ़ाने का और निर्देशन का अधिकार प्राप्त था दूसरे साधारण व्यक्ति जिनको शिक्षा ग्रहण करना और पादरियों से निर्देशन प्राप्त करना उनका कर्तव्य था, तृतीय पादरियों में भी एक HIER-ARCHY थी। जिसमें छोटे पादरी भाग नहीं ले सकते थे ।

कोन्सटनटाइन नया-नया ईसाई बना था इसलिए वह धार्मिक मामलों में उलझना नहीं चाहता था उस समय चर्च कई धार्मिक विवादों में उलझा हुआ था और कोन्सटनटाइन के शासनकाल में विवाद बहुत ही तीव्र हो गये थे पादरी-पादरी के विरूद्ध था और वे लोग एक दूसरे को धर्म विरोधी समझकर धर्म से बहिष्कृत कर रहे थे । कोन्सटनटाइन इस सब विवादों का अन्त चाहता था । इसलिए उसने यह निर्णय लिया कि इन विवादों का निर्णय पादरी वर्ग ही करे किन्तु इन विवादों के निर्णय की स्वीकृति और क्रियान्विती का अधिकार अपने पास रखा इस तरह से वह चर्च का निरीक्षक (Supervisor) बन गया और राज्य की कार्यकारिणी की सत्ता चर्च की सेवा में लग गई । और अब पादरियों की सभा को बुलाना और उनके निर्णय को स्वीकृति प्रदान करना सम्राट का विशेषाधिकार बन गया । चर्च ने लौकिक सत्ता के इस हस्तक्षेप का स्वागत किया । लेकिन कुछ ही समय बाद चर्च को यह विदित हुआ कि राजनैतिक सत्ता का संरक्षक एक शुद्ध बलिदान नहीं है । और शीघ्र ही संरक्षक स्वामी बन गया अर्थात् चर्च पर सम्राट का अधिकार हो गया ।

अब पोप का यह उत्तरदायित्व बना कि वह सम्राट के इस अनुचित हस्तक्षेप को धार्मिक मामले में रोकने की चेष्टा करे, अर्थात् चर्च और राज्यों के सम्बन्धों को सुस्पष्ट करे । पोप जेलेसियत (492-426) ने अपने एक प्रसिद्ध पत्र में जो सम्राट को लिखा यह स्पष्ट किया कि इस संसार में दो सत्ताएं मुख्य तौर से शासन करती हैं एक चर्च की पवित्र सत्ता है दूसरे सम्राट की सत्ता है । किन्तु पादरियों का बोझ बहुत भारी है । क्योंकि वे न केवल धार्मिक क्षेत्र में ही जनता की देखरेख करते हैं बल्कि सम्राट की भी देखरेख करते है । इस विचारधारा के अंतर्गत पोप ने निम्नलिखित सिद्धांतो का प्रतिपादन किया-

1. पादरी और सम्राट दोनों ईश्वर से सत्ता प्राप्त करते हैं ।
2. दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में सर्वभोम व स्वतंत्र है । पादरी पारलौकिक क्षेत्र में और सम्राट लौकिक क्षेत्र में ।
3. पादरियों की सत्ता लौकिक मामलों में सम्राट के अधीनस्थ है और सम्राट की सत्ता अलौकिक मामलों में पादरियों की सत्ता के अधीनस्थ है । पादरी को लौकिक मामलों में राजा

की सत्ता की आज्ञा का पालन करना चाहिए और राजा को अलौकिक मामलों में रोम के बीशप की आज्ञा का पालन करना चाहिए ।

4. क्योंकि पादरी स्वयं रोम के बीशप की आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझते हैं, इसलिए सभी लोगों को विशेषकर सम्राट को रोम के बीशप की आज्ञा का अधिक पालन करना चाहिए ।

5. पादरी की सत्ता का उत्तरदायित्व सम्राट के उत्तरदायित्व से अधिक भारी और अधिक विस्तृत है ।

उपरोक्त योजना के अन्तर्गत चर्च ओर राज्य के सम्बन्धों की मूल रूपरेखा तैयार हुई और यह काम भविष्य के पोप, पादरियों पर रहा कि वह समय, स्थान और परिस्थितियों के अनुकूल जब भी मौका मिले इसका उपयोग करे ।

इस सिद्धान्त को सर्वप्रथम गिरीगौरी (Gregory 590-604) ने अपने ढंग से परिभाषित किया । उसकी नीति थी कि जहाँ तक हो सके सम्राट के साथ सम्बन्ध रखने में बड़ी चतुराई से काम लिया जाए किन्तु साथ ही चर्च की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए दृढ़ता की नीति का अनुसरण किया जाए । वह एक तरफ सम्राट का आज्ञाकारी नागरिक था और लौकिक मामले में वह उसके आदेशों का पालन भी करता था । किन्तु कुछ मामले में वह उसके आदेशों का पालन भी करता था । किन्तु कुछ मामले में गिरी गौरी (Gregory) अस्पष्ट था कि लौकिक व अलौकिक मामलों में विभाजन की सीमा रेखा कहाँ खेची जाए सम्राट मोरिशस (Mauricius) (582-602) ने एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार सैनिक और ऐसे लोग जिनको कोई उत्तरदायी सार्वजनिक काम मिला हुआ है वे पादरी नहीं बन सकते और मठों को चाहिए कि वे ऐसे लोगों को अपने यहां प्रवेश न दें गिरी गौरी ने इस आदेश पर सम्राट को चेतावनी दी कि जो लोग मुक्ति का रास्ता अपनाना चाहते हैं । उनका रास्ता बन्द करके आप ईश्वर के सामने एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी ले रहे हैं । गिरी गौरी की इस प्रकार की नीति जिसके अन्तर्गत वह सम्राट के आदेशों का पालन भी करता है और साथ ही विरोध भी करता है इस बात को प्रकट करता है कि लौकिक व अलौकिक सीमा रेखा खींचते समय इन दोनों के बीच एक मध्य क्षेत्र भी है जिस पर दोनों ही वर्ग अपना अधिकार जताते हैं जिसमें समझौते का होना अनिवार्य है । वस्तुत: यही वो बीच का क्षेत्र है जिस पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए चर्च और राज्य के बीच जो विवाद हुए उनमें से अधिकांश का सम्बंध इसी क्षेत्र से था और यह विवाद मध्य युग से आधुनिक युग तक चलते रहे ।

रोम के पोप के बिजेनटियन राज्य से राजनैतिक सम्बन्ध थे किन्तु यह संबंध गिरी गौरी के उत्तराधिकारियों के जमाने में टूटते चले गये यहाँ तक कि पूर्णतया: टूट गये और अब पोप रोम में अपने लौकिक राज्य की सार्वभौम सत्ता के रूप में प्रकट हुआ इस घटना ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि अब पोप भी लौकिक मामले में राजनैतिक सत्ता के अधीनस्थ है; समाप्त होने लगा और उसके स्थान पर मध्ययुग का यह सिद्धान्त आया की पोपजिस तरह से धार्मिक मामले में सर्वश्रेष्ठ है वैसे ही वह लौकिक मामले में सर्वश्रेष्ठ है ।

17.4 प्रारम्भिक मध्य युग:

प्रारम्भिक मध्य युग में सामूहिक रूप से धर्म परिवर्तन हुआ जिसके कारण जगह-जगह चर्चो की स्थापना की गई । स्थानीय चर्चो के अपने राजाओं के साथ सम्बन्ध बहुत ही निकट के थे । पादरी वर्ग ही एक ऐसा वर्ग था जिसके पास विद्वता थी और प्रशासनिक अनुभव भी था । इसलिए यही लोग राजा के धार्मिक और सांसारिक मामलों में उसके परामर्शदाता भी थे । चर्चो की आर्थिक स्थिति भूमि के अनुदान के कारण बहुत अच्छी थी । इस प्रकार पश्चिमी यूरोप के इसाई राज्यों में चर्च के अधिकार्यो की महत्वपूर्ण स्थिति थी । उदाहरण के लिए स्पेन में तो चर्च इतना शक्तिशाली हो गया था कि उसने काफी सीमा तक राज्य को ही अपने आप में पचा लिया था । किन्तु फ्रांस में स्थिति दूसरी थी । वहां पर राजाओं में उत्तराधिकारी के लिए संघर्ष होते रहते थे और वहां पर चर्च का कोई मुखिया ना होने के कारण वह राजाओं के लालच का शिकार बन गया था । राजा लोग अपना समर्थन प्राप्त करने के लिए चर्च की भूमि को अपने सैनिकों में वितरित कर देते थे बिशप और अन्य धार्मिक अधिकारियों के चुनावों में हस्तक्षेप करते थे । या अनी ओर से ही बिशप मनोनीत कर देते थे । किन्तु वृद्ध अवस्था में वह चर्चो को अनुदान भी देते थे । जिससे कि वह अपने पापों का प्रायश्चित भी करते थे कभी-कभी पादरी लोग राजाओं के द्वारा इस प्रकार धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप पर विरोध प्रकट करते थे परन्तु इसका कोई प्रभाव उन पर नहीं होता था । ऐसी परिस्थिति में फ्रांस के सम्राट शर्लीमेन ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और उसने अपने राज्य अभिषेक के समय जो शपथ ली उसमें कहा कि वह ईसाई धर्म को संरक्षण देगा और उसकी सुरक्षा की व्यवस्था करेगा । दूसरा वह यह देखेगा कि चर्च के द्वारा बनाए गये कानूनों का सभी लोग पालन करे । तीसरा यह कि ये उसकी जिम्मेदारी होगी कि बिशप व क्लर्जी अच्छा व्यवहार करे । क्योंकि राजा का भी अपना एक धार्मिक मिशन है इस तरह शर्लीमेन ने अपनी धार्मिक नीति से लौकिक व अलौकिक क्षेत्र का जो अन्तर था उसको लगभग समाप्त कर दिया । उसने पोप ल्यू तृतीय को जो पत्र लिखा उसमें अपने विचारों को ओर भी स्पष्ट किया जिसमें कहा गया "हमारा काम ईश्वर की सहायता से क्राइस्ट के चर्च की हर जगह रक्षा करना है । और उसको काफिरों के हमले से बचाना है और सबको कैथोलिक धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य करना हे तुम्हारा काम (पोप और पादरी का) हाथ उठाकर प्रार्थना करना है जिससे कि तुम्हारी प्रार्थना से ईश्वर हमारी मदद करे और क्राइस्ट के शत्रुओं पर ईसाई लोगों को विजय मिलें ।" वस्तुत: चार्ल्स

1. पादरियों के अनुशासन की देखभाल करता था चाहे वह बड़े हों या छोटे हों।
2. मठों में नियमों का पालन हो और व्यवस्था बनी रहे ।
3. चर्च और मठों के स्कूल स्थापित करता थं ।
4. बीशप और अन्य लोगों की नियुक्तियां करता था और बाहर से चुनावों का प्रदर्शन करता था ।
5. चर्च की सभाऐं आयोजित करता था । उनकी अध्यक्षता करता था और निर्णय करता था ।
6. वह चर्च पर उसी प्रकार से शासन करता था जैसा किसी राज्य पर करता है।

7. वह चर्च के नियम बनाता था । जैसे कि प्रतिमाओं की पूजा की जाए अथवा नहीं ।

इस प्रकार यह पश्चिमी ढंग की ऐसी व्यवस्था थी जिसमें सीज़र ओर पोप दोनो के काम एक साथ मिला दिये गये हैं । किन्तु यह पूर्वी पद्धति से दो प्रकार से भिन्न थी:

1. पश्चिमी चर्च में सुधार की बहुत आवश्यकता थी ओर केवल राजा ही प्रभावशाली ढंग से यह काम कर सकता था । इस प्रकार चार्ल्स चर्च को बचाने वाले के रूप में प्रकट हुआ ।

2. धार्मिक मामलों में महत्वपूर्ण निर्णय लेते समय वह अक्सर पोप से परामर्श करता था और उसकी स्वीकृति लेता था और यह ऐसी स्वीकृति थी जो कभी इंकार नहीं की जाती थी । कभी भी किसी पोप या पादरी ने चर्च पर सम्राट के नियंत्रण पर विरोध भी प्रकट नहीं किया ।

चार्ल्स ने अपना शाही ताज पोप ल्यु तृतीय से क्रिसमस के दिन 800 AD प्राप्त किया और इस तरह वह होली रोमन सम्राट बन गया और यह पदवी 800 से लेकर 1800 तब बनी रही ओर इस तरह चार्ल्स रोम का संरक्षक बन गया जिस तरह से सम्राट ने पोप से ताज ग्रहण किया उसमें पोप और राज्य के भविष्य के सम्बन्धों को प्रभावित किया । किन्तु जब तक चार्ल्स जिन्दा रहा चर्च और राज्य पोप और साम्राज्य शांति से रहे ।

17.5 सामन्तीय युग:

सामन्तीय युग में सर्वभौम सत्ता अब राजा और उसके अधिकारियों के बीच का एकाधिकार नहीं रहा और सत्ता अब सामन्तों के बीच वितरित हो गई । चर्च और उसकी संस्थाओं पर भी इसका प्रभाव पड़ा बहुत से बीशप स्वयं सामन्त बन गये जो लौकिक व परलौकिक अपने 2 क्षेत्र में अधिकार जताते थे ।

फ्रांसिसी ताज अब जर्मन वंशों के पास चला गया था और जर्मन सम्राट ओटो (Otto) प्रथम (636-973) ने जर्मनी व इटली के राज्यों का एकीकरण किया और उसमें पोप तंत्र को रोमन कुलीन वर्ग के पंजो से छुड़ाया किन्तु पोप तंत्र ने अपनी स्वतंत्रता पुन: प्राप्त नहीं की सम्राट के द्वारा ही पोप नियुक्त किये जाते थे और अधिकांश वह लोग जर्मन के ही होते थे । उनमें से एक पोप ल्यू नवमLeo IX (1049- 1054) जिसने चर्च में सुधार करना चाहा । और हेनरी चतुर्थ की बाल्यावस्था का लाभ उठाकर जो अपनी माता के सरंक्षण में कार्य कर रहा था । एक साहसिक कदम उठाया और बिना सम्राट के हस्तक्षेप के पोप निकोलस द्वितीय को चुन लिया । उसके बाद से पोप चर्च के सामन्तीय दबाव से मुक्त करने की चेष्टा करने लगा । गिरी-गौरी सप्तम (1 073-1085) ने ये आदेश जारी किया कि जो भी चर्च के मामले में हस्तक्षेप करेगा उसको निष्कासित कर दिया जाएगा । सम्राट हेनरी चतुर्थ को निष्कासित भी कर दिया गया । अपने निष्कासन को माफ कराने के लिए वह पोप से केनोसा (Canossa) मिलने भी गया किन्तु वहां उसको पोप से मिलने के लिए इन्तजार करना पड़ा और इस प्रकार उसको अपमानित किया गया।

1122 में वॉर्म्स (Worms) नामक जगह यह समझौता हुआ कि बीशप का चुनाव धार्मिक नियमों के आधार पर ही किया जाएगा किन्तु सम्राट की उपस्थिति में ही हो । ये पोप की आंशिक विजय थी ।

गिरि गैरी के चर्च ओर राज्य संबन्धित विचारों ने उस समय के पारस्परिक संबंधों को काफी प्रभावित किया इन विचारों को "पोप के आदेश "Dictatus Papae i.e. Dielate of the Pope" कहा जाता है जिसमें उसने यह कहा कि केवल पोप को ही विश्वव्यापी क्षेत्र प्राप्त है । वो ही धार्मिक सभा को बुलाए, बिना बीशप की नियुक्ति अवनति ओर हस्तान्तरण कर सकता है, वही नये कानून भी बना सकता है । वही सम्राट का वस्त्र भी धारण कर सकता है ये उसी को यह अधिकार प्राप्त है कि राजा उसके चरण चूमें, उसी को यह अधिकार प्राप्त है कि किसी सम्राट को अपदस्थ करे, उसका निर्णय अन्तिम है और जो व्यक्ति पोप के इन विचारों से सहमत नहीं है वह कैथोलिक नहीं हो सकता है । इस प्रकार के धार्मिक और राजनैतिक योजना की प्राप्ति का काम गिरी-गौरी ने अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ा ।

गिरी-गौरी के उत्तराधिकारियों ने इस व्यवस्था को और बढ़ाया और कई क्रिश्चयन राज्य पोप की जागीरें बन गयी और उनके शासक पोप के सामन्त बन गये और उन्होंने पोप के प्रति वफादारी की शपथ ली वार्षिक नजराना देने का वादा किया और सामन्तीय सेवा करनी चाही इस नयी पद्धति में सम्राट भी पोप का पहला सामन्त बन गया इसी नयी व्यवस्था को प्रमाणित करने के लिए धार्मिक लेखकों ने 12 वीं शताब्दी में नये-नये सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया । उनमें से एक सेलसबरी के जोन ने यह थ्योरी प्रतिपादित की कि ईसा मसीह ने अलौकिक और लौकिक तलवारें महात्मा पीटर और उनके उत्तराधिकारियों को प्रदान की जिसमें अलौकिक शक्ति का उपयोग पोप को करना था और लौकिक कार्य पोप के आदेशों से सम्राट को दिया गया इस प्रकार एक नये और व्यापक संघर्ष के लिए वातावरण बना दिया गया जिसमें एक तरफ लौकिक सत्ता थी और दूसरी तरफ अलौकिक ।

जब पोप समर्थक विद्वान यह कार्य कर रहे थे तो दूसरी ओर राज्य समर्थक विद्वानों ने रोमन कानून की नयी व्याख्या की । जिसके अनुसार सम्राट को सार्वभौम बताया गया । क्योंकि सम्राट ही विधि का स्त्रोत था इसलिए विधि के परे था इस व्याख्या से पूर्व राजा कानून का संरक्षक और स्वयं कानून का पालक माना जाता था और जो कोई शासक कानून का उल्लंघन करता उसको वैधानिक राजा नहीं माना जाता किन्तु रोमन कानून की इस नयी व्याख्या ने सम्राटों को नयी योजनाएं बनाने का अवसर प्रदान किया । इस प्रकार पोप और सम्राट के बीच जो संघर्ष प्रारम्भ हुआ वह राजनैतिक था ना कि धार्मिक । किन्तु पोप ने सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय को धर्म विरोधी घोषित किया और यूरोप की सभी धार्मिक शक्तियों को उसके विरूद्ध धर्मयुद्ध का आह्वान किया इसमें फ्रेडरिक द्वितीय की हार हुई और ये मध्युग के पोप की अन्तिम विजय थी ।

17.6 चर्च और उत्तर मध्य कालीन राजतंत्र:

फ्रेडरिक द्वितीय की हार से पवित्र रोमन साम्राज्य कभी भी उभर नहीं पाया किन्तु साथ ही पोप ने अपनी इस विजय से आशानुकुल विश्व सार्वभौम सत्ता प्राप्त नहीं की इसके विपरीत इस काम में पोप की राजनीतिक सत्ता का हास हुआ इसका एक कारण यह था कि अब मंच पर एक नया प्रतिद्वन्द्वी प्रकट हुआ और वे थे शक्तिशाली राजा जो सामन्तीय पद्धति के द्वारा हुए रिक्त स्थानों की पूर्ति कर रहे थे । और निरंकुश वाद के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे थे । और इस तरह पुरानी समस्या कि राज्य में चर्च है या चर्च में राज्य है कि पुनरावर्ती

हो रही थी । किन्तु इस बात नया राजतंत्रीय राज्य एक ठोस वास्तविकता थी और राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित थी । जिसका केन्द्र बिन्दू राजा था । जितना राष्ट्रीय राज्य शक्तिशाली हो रहे थे उतने ही वे चर्च को अपनी राष्ट्रीय पद्धति में समा रहे थे । और चर्च भी एक राष्ट्रीय संस्था बन रहा था । अब राज्य और चर्च के बीच जो संघर्ष प्रारम्भ होने जा रहा था । वह धार्मिक दावों या विचारधाराओं पर आधारित नहीं था । इस संघर्ष का मुख्य केन्द्र बिन्दु पादरियों के विशेषाधिकार का प्रश्न था । क्योंकि इन विशेषाधिकारों को लेकर पोप सम्राट के प्रशासन के आंतरिक मामलों में हर कदम पर हस्तक्षेप करता था । इन विशेषाधिकारों में दो ऐसे थे जिससे राज्य बहुत चिढ़ता था ।

1. धार्मिक सम्पत्ति और उसके आय के स्त्रोत राज्य करों से मुक्त थे । जबकि पोप भिन्न-भिन्न रूपों से उनसे पैसा हड़प सकता था । इस प्रकार देश की सम्पत्ति का एक बड़ा भाग राजा के करों के स्रोत से युक्त था । जबकि पोप उससे हर प्रकार का लाभ उठा सकता था।

2. पादरियों को सम्राट ने दीवानी और फौजदारी न्यायलयों के प्रभाव क्षेत्र से अलग रखा न केवल दीक्षित पादरी ही बल्कि जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग राज्य के न्यायालयों की परिधि से बाहर था ।

पोप ने अपनी आय के लिए बहुत विस्तृत व्यवस्था बना ली थी । जिससे वह प्रत्यक्ष ओर अप्रत्यक्ष रूप से भिन्न-भिन्न प्रकार के कर प्राप्त करके अपने कोष को भरता था । अपनी सेवाओं के बदले वह बड़ी-बड़ी शुल्क लेता था । सबसे ज्यादा चिढ़ाने वाली बात यह थी कि बीशप के पद पर नियुक्ति के अधिकार को वह सुरक्षित कर लेता था और जब तक नियुक्ति पाने वाला पोप के कोष में अपने पहले साल की आय जमा कराने का वचन नहीं देता था उस समय तक पोप उसकी नियुक्ति नहीं करता था । सम्राट के द्वारा जो मनोनीत किये जाते थे पोप उनकी पुष्टि तभी करता था जब उसको शुल्क दे दिया जाए । धर्मयुद्ध के लिए जो विशेषकर लिया जाता था उसका एक बहुत बड़ा भाग स्थाई रूप से पोप के खजाने में चला जाता था । आय के कई ओर भी साधन थे जिससे पोप का खजाना भरता रहता था उनमें से एक यह था कि जब संतों के मकबरों पर यात्री नजराना देते थे उससे भी आय में वृद्धि होती थी।

सैद्धान्तिक रूप से चर्च की सम्पति करों से मुक्त थी किन्तु इस सिद्वांत का पालन इसके उल्लंघन में किया जाता था । और जब कभी राजाओं को जरूरत पड़ती थी तो वे धार्मिक सम्पति से ही स्वतंत्र रूप से पैसा उठाते थे । किन्तु यह बात बिल्कुल सही है कि उस समय के शासकों को यह पूर्णतया विदित था कि उनके राज्य के सोने का बहाव (flow) जो पोप के खजाने में होता है उससे काफी धनराशि प्रचलन से बाहर हो जाती है और इससे आर्थिक कठिनाइयों में वृद्धि होती है ।

इसके अतिरिक्त आपत्तिजनक बात ये थी कि न्यायालय भी दो प्रकार के थे एक धार्मिक न्यायालय दूसरे धर्मनिरपेक्ष न्यायालय पादरियों को यह विशेषाधिकार प्राप्त था कि उनके मुकदमे धार्मिक अदालतों में ही चल सकते थे यह बहुत पुरानी पद्धति थी । किन्तु मध्य युग में इस विशेषाधिकार का विस्तार करके हर उस व्यक्ति को भी इसका लाभ दे दिया गया था

जिनका चर्च से किसी ना किसी प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिए चाहे वह लोग सांसारिक कार्य ही क्यों ना करते हो उनको भी धार्मिक वर्ग का सदस्य मान लिया गया था । इन अदालतों में कार्य परिधि को लेकर काफी विवाद चलता था जिससे न्याय का अन्याय हो जाता था । धार्मिक अदालतें अपराधियों को हल्की सजाएं देकर अपराधी प्रवृत्तियों को और बढ़ाती थी ।

पोप बोनीफेस (Boniface) ने अपने एक विशेषादेश जो 1302 में जारी किया यह घोषणा की कि पोप का सारे समाज पर प्रत्यक्ष रूप से अधिकार है चाहे वह धार्मिक मामलों हो या राजनैतिक । और यह घोषणा की कि कोई भी ईसाई मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है जब तक की वह पोप के आदेशों का पालन नहीं करता । किन्तु पोप को 1303 में बंदी बना लिया गया और फिर उसकी मृत्यु हो गई इससे पोप का बहुत अपमान हुआ । 1305 में क्लिमेन्ट (CLEMENT) पंचम पोप चुना गया यह एक फ्रांसिस पोप था जो कभी रोम नहीं गया । इससे पोप की राजनैतिक महत्वकांक्षाओं को बड़ी क्षति पहुंची इसके बाद चर्च में आपस में विवाद पैदा हुआ । पोप एक दूसरे को निष्कासित करने लगे और इस तरह चर्च अपने धार्मिक और राजनैतिक दोनों कार्यो में असफल रहा । ऐसी स्थिति में चर्च में सुधार करना अनिवार्य हो गया । इसके लिए 1414 में कान्सटेन्स (CONSTANCE) में एक आम सभा आयोजित की गई जिसमें पादरी धार्मिक व्यक्ति राजा और विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए इस सभा ने तीन पोपों को हटा दिया और नया संविधान बनाया जिसके अन्तर्गत चर्च की शासन व्यवस्था को एक साधारण सभा को सौंप दिया गया और पोप इसका वरिष्ठ अधिकारी बना जिसका चयन किया जाने लगा ।

17.7 चर्च और राज्य निरंकुशबाद के दौर में:

इस काल के पोप मानववादी थे और पुर्नजागरण से प्रभावित थे । इनमें कट्टर धार्मिकता नहीं थी बल्कि वे सत्ता और ऐशो आराम के प्रेमी थे । धार्मिक मामले में वे काफी उदार और चतुर कूटनितिज्ञ थे इसलिए उन्होंने इस बात की कोशिश की कि पोप का शासन पुन: स्थापित किया जाए । उन्होंने उचित और अनुचित तरीके से शेष पुरानी धार्मिक स्वतंत्रता को कुचलने की कोशिश की छोटे-छोटे सामन्तों से मुक्ति प्राप्त की और अपने आपको युरोपियन राजनीति और युद्धों के भँवर में फंसा लिया । चर्च को सुधारने की जितनी भी योजनाएं थी वे अलमारियों में बन्द कर दी गई ।

इस कारण राज्य और चर्च मैं जो अब संबंध स्थापित हुए वह पूर्णतया: राजनैतिक और धार्मिक तथ्यों पर आधारित थे राजा वस्तुत: अपने राज्य के चर्चो पर नियंत्रण रखते थे पादरियों का चुनाव करते थे किन्तु अब राजा ये चाहते थे कि पोप उनके इस कार्य को वैधानिक प्रदान कर दें राजाओं का पादरी किसी प्रकार का कोई विरोध नहीं करते थे क्योंकि उनका व्यक्तिगत स्वार्थ और राष्ट्रीय भावनाएं उनके सम्राट के साथ जुड़े रहने को प्रेरित करती थी । इसलिए चर्च और राज्य के आन्तरिक विवाद स्थानीय विवाद बन गये थे । जिनका क्षेत्र धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष अदालतों तक सीमित हो गया । इसलिए अब राजा बड़ी आसानी के साथ इस विश्वास के साथ कि उनके पादरी उसका साथ देगें पोप से लोहा ले सकते थे । दूसरी ओर पोप की महत्वाकांक्षा उसको इस बात के लिए भी प्रेरित कर रही थी कि वे यूरोपियन राजनीति में

बढ़ चढ़ कर भाग ले और इसके आक्रामक व रक्षात्मक युद्धों में उसको महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने का मौका मिले ।

सबसे कठिन परिस्थिति उस समय उत्पन्न हुई जब 1438 में फ्रांस के चर्च ने अपने आपको स्वतंत्र होने की घोषणा की । सिवाए धार्मिक मामले के जो पोप के लिए छोड़ दिया गया। इस घोषणा को इतिहास में गोलिकन स्वतंत्रता कहा जाता है । इससे फ्रांस के पादरी बहुत खुश हुए और फ्रांस का चर्च एक राष्ट्रीय चर्च 'बन गया और अब वह एक लौकिक सत्ता के नियंत्रण में आ गया ।

पोप ने इस घोषणा का जिसको प्रेगमेटिक (pragmatic Sametum) सेक्सन भी कहते है पोप ने विरोध किया परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । गिरी-गौरी सप्तम का युग समाप्त हो चुका था और पोप के अनुभवों ने यह जता दिया था कि राष्ट्रीय बचो पर सम्राट का ही नियंत्रण रहेगा वे हटने वाला नहीं है । और अब वह यह कोशिश कर रहे थे कि इसमें से जितना भी बचाया जा सके अच्छा है । पोप और समझौता करने के लिए तैयार थे और इस तरह 1516 में पहला धार्मिक समझौता पोप ल्यू दसम और फ्रासिस प्रथम के बीच हुआ । इस धार्मिक समझौते का लक्ष्य फ्रांस में चर्च ओर राज्य के संबंधों को स्थायी बनाना था । इसके अन्तर्गत राजा को यह अधिकार दिया गया कि फ्रांस के सभी बीशप और अन्य धार्मिक पदों पर नियुक्त करने का अधिकारी होगा । वे मुकदमें जो अब तक रोम में पोप के न्यायालय में प्रस्तुत किये जाते थे कुछ को छोड़कर सभी फ्रांस की धार्मिक अदालतों में तय किए जायेगें । इन अदालतों की अपील सम्राट की स्वीकृति से ही रोमन न्यायालयों में की जा सकेगी । नियुक्ति करने के लिए नियम तैयार किये गये । मठों को यह अधिकार दियां गया कि वे अपने धार्मिक एबोट (Abbot) का चयन करेगें किन्तु यह चयन राजा की उपस्थिति में ही होगा ।

पोप ने इसके बदले में प्रेगमेटिक सेक्शन को समाप्त करवा दिया । इस धार्मिक समझौते से चर्च पर राजा को जो अधिकार मिला था वह सैद्धान्तिक रूप से पोप के क्षेत्रीय अधिकार को भी मान्यता मिल गई । यह समझौता भविष्य के समझौतों के लिए एक उदाहरण बन गया । और इस प्रकार चर्च और राज्य में जो एकता स्थापित हुई वह बहुत लम्बे समय तक अपरिवर्तित रही ।

धर्म सुधार (रिफोरमेशन-Reformation) के कारण पोप की राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं को धक्का लगा क्योंकि यूरोप का बहुत बड़ा भाग रोम से दूर हो गया । धर्म सुधारकों ने पोप की सका को समाप्त करके चर्च को लौकिक सज्ञा प्रदान कर दी ओर सभी धार्मिक कार्य राज्य के अधीन हो गये और राज्य का भी यह कर्तव्य हो गया कि वह अपने धार्मिक उत्तरदायित्व सम्भाले । इसका परिणाम यह निकला एक नये प्रकार के धार्मिक राज्य का जन्म हुआ और राजा देवीय अधिकार प्राप्त राजा के रूप में कार्य करने लगा । यह सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ कि राज्य की जनता उसी धर्म का पालन करे जो राजा का धर्म है । इसकी स्वीकृति 1648 में वेस्टफेलिया की संधि के द्वारा कर दी गई जिससे तमाम धार्मिक युद्धों का अन्त हो गया ।

कैथोलिक विधानों ने प्रतिवादात्मक सुधार आन्दोलन के अन्तर्गत पोप के लौकिक मामलों पर अधिकार में नया संशोधन किया । इसके लिए वह जीलेशियन (Gelasion) सिद्धान्त की तरफ वापस लौटे जिसमें यह कहा गया था कि दोनों ही सत्ताएं लौकिक व अलौकिक अपने-

अपने क्षेत्र में स्वतंत्र है किन्तु एक समान लक्ष्य के लिए संबंधित है । इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बीशप लौकिक मामले में राजा के अधीन हुए अब पोप पर लागू नहीं किया जा सकता था क्योंकि उसकी सार्वभौम सत्ता लौकिक व अलौकिक मामलें में पवित्र बन गई थी कैथोलिक धार्मिक व्यक्तियों में देवीय अधिकार राजा के सिद्धान्त के विरूद्ध थे सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि कोई भी शासन वैधानिक शासन नहीं है । अगर जनता की सहमति उसको प्राप्त नहीं है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि राजा को जनता के द्वारा सस्ता मिली है या राजा जनता के प्रति उत्तरदायी है । इसका साधारण मतलब यह था कि शासन का उद्देश्य जनता की भलाई करना है और जो शासन इस लक्ष्य की पूर्ति करता है उसी को जनता का समर्थन मिल सकता है वह राजा अपराधी होगा जो कानून का उल्लंघन करे, अन्याय करे, धर्म से धा करे ऐसे राजा को जनता पसन्द नहीं करेगी । जनता उससे घृणा करेगी और वह राजा ना होकर शोषक बन जाएगा ।

इस वाद विवाद का यह परिणाम निकला कि कैथोलिक राज्यों में कैथोलिक धर्म का समर्थन किया जाएगा ओर प्रोटेस्टेंट राज्यों में प्रोटेस्टेंटों को समर्थन मिलेगा ।

18 वीं शताब्दी में चर्च और राज्य के बीच जो परम्परागत सहानुशुतइ पैदा हुई थी वह भी धूमिल होने लगी । धार्मिक सहष्णुता की विचार धारा मानववादिता और उदारवाद के कारण विकसित होने लगी जिसमें धार्मिक कट्टरता को कम करके दिखाया गया । प्राचीन राजतंत्रीय पद्धति मरने लगी और शीघ्र ही फ्रासीसी क्रांति ने सबको बहा दिया।

17.8 चर्च और उदार राज्य:

पहला राज्य जिसने समस्या का क्रांतिकारी समाधान किया अर्थात् चर्च और राज्य को अलग-अलग किया वह था अमेरिका का संयुक्त राज्य इसके संघीय संविधान में कांग्रेस को इस बात के लिए बाध्य किया कि कोई ऐसा कानून बनाए जिसमें किसी चर्च को स्थापित किया जाए या किसी धर्म को मना किया जाए या धार्मिक कारण से किसी नागरिक को उसके अपने राजनैतिक अधिकारों के अपनाने में पक्षपात किया जाए । धार्मिक स्वतंत्रता और कानून की दृष्टि से सभी धर्मो को समानता, आधुनिक राज्यों का सिद्धान्त बना ।

फ्रांसीसी राज्य क्रांति ने विचारों और धर्म की स्वतंत्रता की घोषणा की किन्तु सर्वप्रथम उसने इस घोषणा में चर्च शब्द को नहीं हटाया बल्कि यह कोशिश की कि चर्च के सगंठन में क्रांतिकारी परिवर्तन करे । परिणाम उत्साहजनक नहीं निकले इसलिए जेकोबिल सदस्यों ने बिना चर्च और धर्म के राज्य को पसन्द किया जब नैपोलियन पहला कौन्सल बना तो उसने कैथोलिक चर्च को पुन: स्थापित किया और 1801 का दूसरा धार्मिक समझौता हुआ ।

17.8.1 1801 की धर्म संधि:

फ्रांसीसी राज्य क्रांति के समय क्रांतिकारियों के सामने आर्थिक संकट बहुत विकट था, पूरा देश दिवालियापन के दरवाजे तक आ गया था । इस समस्या से निपटने के लिए कई योजनाएं बनाई गई लेकिन किसी पर कार्य नहीं हुआ अब धन का केवल एक ही स्रोत था- चर्च की संपत्ति का स्रोत धार्मिक कर टाइथ (Tithe) को समाप्त कर दिया था तो फिर चर्च की सम्पत्ति को भी क्यों ना समाप्त कर दिया जाए । कैथोलिक विरोधी लोगों ने सहर्ष समर्थन

किया उदार सिद्धान्तवादियों ने कहा कि चर्च की संचित निधी 'जनता के हित में प्रयुक्त होनी चाहिए । बीशप टेलींरा (Tallerand)ने प्रस्ताव किया कि चर्च की सम्पति राज्य के प्रयोग के लिए छोड़ देनी चाहिए वह प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत कर दिया गया इस तरह चर्च की सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण ने जहां राज्य के संकट को दूर करने में सहायता की वहां दो समस्याएं उठखड़ी हुई । बहुत सी धार्मिक संस्थाए गरीबों की देखभाल करती थी उनका विघटन हो जाने से गरीबों की देखभाल का भार देश के ऊपर आ पड़ा । चर्च की उस- "निकृष्ट और भयानक दान दया" के स्थान पर- जो लोगों में " 'अकर्मण्यता और धरमात्ता पैदा करती थी" राष्ट्रीय सभा ने ऐसी क्रमशालाएं स्थापित करने का निश्चय किया जो "राज्य के लिए उपयोगी सिद्ध हों जिनमें निर्धन अपने परिश्रम के फलस्वरूप जीविका उपार्जित करें । "दूसरा प्रश्न पादरियों के निर्वाह का था क्योंकि अब उन्हें जीविका के लिए अनुदान मिलने बन्द हो गये थे इसके परिणाम स्वरूप (Civil Constitution of the elergy) धर्म आचार्यो का विधान की रचना हुई । इसके अन्तर्गत फ्रांस के चर्च का पुर्नगठन इस तरह किया गया कि वे पादरी जिनकी सम्पति पहले ही छीन ली गई थी बिल्कुल समाप्त हो गई इससे फ़्रांसीसी जनता का एक बहुत बड़ा भाग नाराज हो गया । अब तक पादरी क्रांति के मूल्यवान सहायक रहे थे ।

नेपोलियन बोनापार्ट ने जब फ्रांस के लिए नयी संहिता तैयार की तो उसने रोमन चर्च में भी सुधार करना चाहा । रोमन चर्च क्रांति' के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा रहा था । नेपोलियन का स्वयं अपना कोई धर्म नहीं था यह अवश्य है कि वह चर्च की घंटी सुनकर या तारों भरे आकाश को देखकर रहस्य का कुछ आभास अवश्य पाता था । उसका धर्म इसी रहस्य आभास तक ही सीमित था । "लोग कहेंगे कि मैं पोप वादी हूं मैं ऐसा कुछ नहीं मैं मिश्र में मुसलमान था मै यहां जनता की भलाई के लिए कैथोलिक हो जाऊंगा"

अध्यात्मिक क्षेत्र में नेपोलियन की सीमाएं निश्चित रूप से सीमित थी उसके लिए धर्म केवल कैटलबी के अनुसार एक उपयोगी राजनैतिक साधन, राष्ट्र की कल्पना को आकृष्ण करने वाला केन्द्र, सामाजिक सीमेंट और एक अभयद्वीप (Safety Valve) था उसका मत था "लोगों के पास धर्म होना चाहिए और धर्म सरकार के हाथों ।मे रहना चाहिए" । इस समय फ्रांस का धर्म सरकार के शत्रुओं के हाथों में था ।

डेविड थोमसन ने इस समझौते पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि नेपोलियन का मुख्य उद्देश्य यह था कि क्रांति से उत्पन्न धार्मिक विवाद का अन्त किया जाए ओर एक व्यवहारिक व्यवस्था स्थापित की जाए । वह राजतंत्र को कैथोलिकवाद से अलग करना चाहता था । जिससे कि वह फ्रांस के एक बड़े जन-समूह की शक्तिशाली कैथोलिक भावनाओं को संतुष्ट कर सके और साथ ही कैथोलिक समर्थक भावनाएं ना भड़के जो कि चर्च की सत्ता और सम्पत्ति को पुन: दिलाने की चेष्टा कर रहे थे इस लक्ष्य की प्राप्ति में नये पोप Pius सप्तम ने उसकी सहायता की । नेपोलियन ने कहा था "इंग्लैण्ड की अधीनता में रहने वाले पचास प्रवासी बीशप फ्रांस के पादरी वर्ग के वर्तमान नेता है । "नेपोलियन ने पोप के साथ एक समझौता किया समझौते के द्वारा नेपोलियन ने पादरियों का अविवाहित रहना, बीशपों की पोप द्वारा दीक्षा और धार्मिक कानून को फिर से स्थापित करना स्वीकार किया । दूसरी ओर पोप ने यह स्वीकार

किया कि राज्य पादरियों को वेतन दे सकता है । उसने क्रांतिकाल में की गई भूमि व्यवस्था पर भी अपनी मंजूरी दे दी ।

इस समझौते से फ्रांसीसी गणतंत्र का चर्च पर पूरा अधिकार हो गया किन्तु कैथोलिक धर्म का स्थान नहीं ले सका । क्रांति के समय चर्च की जो सम्पत्ति जब्त की गई थी वह लौटाई नहीं गई । पादरियों की संख्या बहुत कम कर दी गई । पुराने शासन के सभी पादरियों को या तो त्याग पत्र देना पड़ा या हटा दिया गया । बीशप और पादरियों को गणतंत्र के प्रति शपथ लेना अनिवार्य कर दिया । पादरियों को जो विशेषाधिकार, छूट इत्यादि मिली हुई थी ओर जिनको क्रांति ने समाप्त कर दिया था वे पुन: प्रारम्भ नहीं की गई । फ्रांस में कैथोलिक धर्म की पुनर्रावृत्ति के लिए एक भारी कीमत चुकानी पड़ी पोप के सामने इसके अलावा कोई विकल्प ही नहीं था । अब नया राज्य जिसमें दो परस्पर विरोधी सिद्धान्तों को मिलाया था अर्था चर्च पर अपना प्रभाव क्षेत्र और धर्म के मामले में स्वतंत्रता अब मूलभूत एक निरपेक्ष राज्य था । थोड़े से अन्तराल के बाद 19 वीं शताब्दी के ऐतिहासिक विकास में युरोप के आधुनिक धर्म निरपेक्ष राज्यों ने इन्हीं दो परस्पर विरोधी सिद्धान्तों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया ।

समाज और राज्य संबंधी जो नये सिद्धान्त 18 वीं शताब्दी में विकसित किये गये इनको अब 19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में उदारवाद का नाम दिया । उदारवाद में राजाओ के देवीय अधिकार के सिद्धांत से इन्कार किया और राजनैतिक सत्ता को जनता से उत्पन्न और जनता के प्रति उत्तरदायी समझा गया । लेकिन कुछ राज के स्थान पर प्रतिनिधि सरकारें बनने लगी । उदारवाद ने आधुनिक गणतंत्र और विचारों तथा विश्वासों व भाषण और संगठन की स्वतंत्रता के द्वारा प्रशस्त कर दिये । धम्र और चर्च राज्य के इस स्वरूप के अन्तर्गत राजनैतिक जीवन के प्रभावशाली तत्व नहीं रहे । विश्वासों की स्वतंत्रता का अर्थ था कि हर नागरिक को यह अधिकार है कि वो जिस धर्म का पालन करना चाहे करे या किसी धर्म का भी पालन ना करे । धार्मिक स्वतंत्रता का अर्थ था कि सभी धर्म कानून की दृष्टि में समान है ऐसी परिस्थिति में राज्य के लिए एक ही विकल्प था कि वह धार्मिक तटस्थता की नीति का अनुसरण करे जो वस्तुत: चर्च और राज्य के अलग-अलग होने का मार्ग था ।

प्रोटेस्टेन्ट धर्म के अनुयायिओं ने इस उदारवाद पर या तो शक्तिशाली विरोध प्रकट नहीं किया और ना ही तर्क संगत आपत्ति प्रकट की । कैथोलिक विद्नों ने चर्च को एक आत्मनिर्भर समाज बताया और यह कहा कि इसको सार्वभौम सत्ता प्राप्त है, अर्थात् इसको कानूनसाजी कार्य कारणी न्याय संबंधी सभी अधिकार प्राप्त हैं । यह सब सार्वभौम सत्ता के तत्व हैं और यह सार्वभौम सत्ता प्रत्यक्ष रूप से आध्यात्मिक क्षैत्र में और अप्रत्यक्ष रूप से लौकिक क्षेत्र में लागू होती है जिससे कि चर्च अपना अध्यात्मिक उद्देश्य पूरा कर सकें । दूसरी तरफ राज्य भी एक आत्म निर्भर समाज है किन्तु इसका क्षेत्र लौकिक चीजों तक ही सीमित है इस प्रकार राज्य की सार्वभौम सत्ता चर्च की सार्वभौम सत्ता से कम है । इसलिए राज्य एक ऐसा समाज है जो केवल तुलनात्मक रूप से पूर्ण है किन्तु चर्च का सार्वभौम क्षेत्र बहुत व्यापक है और अपने आप में पूर्ण है । अपनी पूर्णता में चर्च को यह अधिकार है कि वह राज्य पर कुछ प्रतिबंध लगाए जो नकारात्मक इस अर्थ में कि राज्य चर्च की गतिविधियों में कोई बाधा उत्पन्न ना करे और सकारात्मक थे कि चर्च की भौतिक सहायता करे । चर्च की सार्वभौम सत्ता उसको इस बात का

अधिकार देती है कि चर्च जब चाहे राज के मामले में हस्तक्षेप करे जब राज्य ऐसे कानून बनाए जो चर्च की दृष्टि में जनता को अध्यात्मिक और नैतिक जीवन के लिए खतरनाक हो ।

इस सिद्धान्त ने अन्तरात्मा के प्रश्न को खड़ा कर दिया कि राज्य अपनी जनता के धार्मिक मामलों में कोई रूचि ना रखे । इसी तरह धार्मिक स्वतंत्रता का प्रश्न भी खड़ा हुआ कि राज्य सभी धर्मो के मानने वालों को समान अधिकार और स्वतंत्रता प्रदान करे अर्थात् सत्य और असत्य को एक स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया । तीसरी समस्या ये थी कि भाषण प्रकाशन और सगंठन की स्वतंत्रता अर्थात् चर्च पर आक्रमण की स्वतंत्रता, झूठे धर्म का प्रचार इत्यादि । इन मामलों में चर्च और राज्य का अलग-अलग होना जिसमें चर्च एक और जिसके सार्वभौम अधिकार छीन लिये गये कैथोलिक समर्थकों ने बहुत विरोध किया ।

इन सिद्धान्तों के आधार पर 19 वीं शताब्दी के समस्त पोपों ने राजनैतिक उदारवाद और गणतंत्रीय स्वतंत्रता को अस्वीकार किया ।

राजतंत्र समर्थकों ने सबसे पहले यह आपत्ति प्रकट की कि एक ही जगह एक समय में दो सार्वभौम सत्ता में नहीं रह सकती जब तक कि दोनों के क्षेत्रों को सीमित नहीं किया जाए या दोनों एक दूसरे में विलीन ना हो जाए । उनकी यह भी मान्यता थी कि पूर्ण और सापेक्ष समाज का भेद निराधार है । क्योंकि पूर्णता में कोई पैमाना नहीं होता या तो कोई चीज अपने आप में बिल्कुल पूर्ण हो या होती ही नहीं है Perfect absolutely or not perfect at all सार्व भौम सत्ता में कोई बाध्य सीमा होती ही नहीं है ।

17.8.2

जब चर्च समर्थक और राज्य समर्थक इन विषयों पर विचार ही कर रहे थे कि कांग्रेस ऑफ वियना आमंत्रित की गई जोकि एक प्रति क्रियावादी सम्मेलन था और जो क्रांति की लहर आई हुई थी उसने जहां एक ओर निरंकुश राजतंत्रों को और पोप को एक दूसरे के करीब लाने के लिए बाध्य कर दिया ऐसे वातावरण में पोप ने तख्त और वैदी (THRONE AND ALTAR) थ्रोन और आल्टर के बीच निकट का संबंध स्थापित करने का आग्रह किया । क्योंकि यही उदारता की बाढ़ को रोकने का एक उपाय था ।

डेविट थोमसन ने इस संबंध में लिखा है कि 1815 तक रोमन कैथोलिक चर्च अपने पर हुए अत्याचारों के लाभ उठाने लग गया था । क्रांति के समक्ष जो रक्तपात और आंतक फैला उसने धार्मिक विश्वासों को पुन: जीवित कर दिया और कैथोलिक समर्थक भावनाएं राजतंत्र समर्थक और कुलीन वर्गो में पुन: जीवित हुई । यही वर्ग यूरोपियन राजनीति के सर्वेसर्वा था । 1815 मे रोमन चर्च को अपनी पुरानी विशेष स्थिति प्राप्त हो गई । जहां तक फ्रांस का प्रश्न था यह असम्भव था कि क्रांतिकारियों ने चर्च की जिस सम्पत्ति और भूमि को हथिया लिया था उसको पुन: दे दें । इसलिये राज की ओर से बड़ी उदारता से चर्च को अनुदान दिये गये और चर्च का शिक्षा पर पुन: नियंत्रण स्थापित हो गया । दूसरे देशों में चर्च की सम्पत्ति उनको पुन: मिल गई और एन: प्रभाव भी प्राप्त हो गया यहां तक कि प्रोटेस्टेन्ट राज्य जैसे बिटेन और प्रशा भी यूरोप में पोप की सत्ता की पुन: स्थापना के समर्थक बन गये । इस काम में गैर कैथोलिक सत्ता रूस ने भी उनका साथ दिया । पोप पायस सप्तम के प्रति व्यक्तिगत सहानुभूति दर्शायी

गई क्योंकि नेपोलियन के हाथों उसका अपमान हुआ था । 1804 में जब नेपोलियन ने अपने आपको फ्रांस का सम्राट घोषित किया और पोप को राज्यभिषेक उत्सव में भाग लेने के पैरिस में बुलाया किन्तु पोप के हाथों अपने सर ताज रखने की बजाय उसने खुद ही रख लिया इससे पोप बहुत अपामानित हुआ । पोप ने अपने पुराने विशेषाधिकार व कार्य रोम तथा स्पेन में पुन: प्रारम्भ कर दिये, स्पेन, सार्डेनिया, बवेरिया और नेपुल्स ने चर्च के साथ नये धार्मिक समझौते किये और चर्च ने अपनी खोयी हुई सत्ता पुन: प्राप्त कर ली । चर्च समर्थक नीति के कारण बड़े देशों में विशेषकर फ्रांस और आस्ट्रिया में सरकारी तौर से विरोध प्रकट किया गया । क्योंकि धर्म प्रचारकों जैसविटो (JESUITS) ने फ्रांस, स्पेन और इटली में अपनी सोसायटियां बना ली थी और वे राजनीति, प्रशासन और शिक्षा को प्रभावित कर रहे थे । कुछ ही वर्षो में फ्रांस से जेसुविट की गतिविधियों को सीमित करने के कानून पारित किये । रूस ने उनको निष्कासित कर दिया किन्तु 18 वीं शताब्दी के अंत में जितनी निम्न स्तर पर कैथोलिक वाद पहुंच चुका था । उससे उसने बड़ी तेज गति से पुनरावृत्ति की ओर चर्च समर्थक बहुत ज्यादा प्रभावशाली हो गये ।

इंग्लैण्ड में जहां पर एग्लीकन चर्च को एक विशेष स्थान प्राप्त था और जहां पर उसके विरोध करने वालों को कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था । 1828 तक विधिवत उन लोगों को प्रशासनिक और सैनिक पदों से वंचित रखा जाता था और विश्वविद्यालयों में अध्यापन का कार्य नहीं करने देते थे । चर्च का वह भाग जो देश विदेश में धर्म प्रचार का काम करता था दास प्रथा का विरोध करता था मोटे तौर से राजनीति में रूढ़िवादी रहा और वहां के चर्च ने सुधार आन्दोलन को यहां तक कि ऐसे मानवीय सुधारों को जैसे जेल खाने के सुधार के प्रति किसी प्रकार का समर्थन प्रदान नहीं किया ।

चर्च की सत्ता की पुन: स्थापना संभवतया धार्मिक विश्वासों की पुनरावृत्ति के कारण हुई और तर्क संबंधी विचारधाराएं राज्य की धर्मनिरपेक्ष सिद्धान्त, मानव के प्रकृति संबंधी विचारों को क्रांतिकारी और नेपोलियन युग की ज्यादतियों के कारण धक्का लगा । यूरोप के महानतम बुद्धिजीवी यहां तक कि जो अब तक बहुत तीखी आलोचना करने वाले थे उन्होंने ईसाई सिद्धान्तों को पुराने धार्मिक विचारों के प्रति अपने आपको समर्पित कर दिया । एडमंड बर्क जैसा व्यक्ति सारे यूरोप में रूढ़िवादिता का वक्ता बन गया । फ्रांस में जोजेफ डी मिस्टर और डी बोनल ने राजतंत्र और पोप की सत्ता का समर्थन किया उन्होंने अपने लेखों से उदारवादी विचार धाराओं को खण्डित करने की कोशिश की उनके विचारों को लेमीना LAMENAAS ने लोकप्रिय बनाया और उसने इस बात की चेष्टा की । कि चर्च को राजतत्र से अलग करना चाहिए क्योंकि इन दोनों का घनिष्ठ संबंध चर्च को अनावश्यक रूप से बदनाम करता है उनके विचारों का मूलमंत्र था सत्ता की मांग सत्ता राज को भी मिले और चर्च को भी मिले और यही क्रांति और नास्तिकता के विरुद्ध सबसे बड़ा हथियार है

1800 से पहले-पहले अधिकांश प्रभावशाली बुद्धिजीवी तर्कवादी गणतंत्रीय विचारों के समर्थक और कैथोलिक विरोधी थे किन्तु अब एक दशक से ज्यादा महान बुद्धिजीवी परम्परावाद, रूढ़िवाद और चर्च का समर्थन करते थे ।

जब यूरोप में विशेषकर इटली में स्वतंत्रता के संघर्ष हुए और राजनैतिक एकीकरण हुआ तो इससे निरंकुशवाद की हार हुई और नये गणतंत्रीय अथवा संवैधानिक राजतंत्रों की स्थापना हुई । परिणामस्वरूप पोप ने ना केवल अपना लौकिक राज्य खोया अपितु युरोप की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और मामलों में अपना प्रभाव भी खो दिया । चर्च ने नेपोलियन के युग के बाद जो आर्थिक और -सामाजिक सत्ता प्राप्त की और शिक्षा पर जो नियंत्रण स्थापित किया उसने उदारवादी मार्ग में बड़ी बाधाएं उत्पन्न कीं । इटली में विशेषकर जहां पोप को उसके लौकिक राज से हटा कर जो राष्ट्रीय एकीकरण हुआ चर्च और नव स्थापित इटली के राज्य के बीच स्थाई शत्रुता की स्थिति पैदा कर दी । कावुर के शब्दों में "एक स्वतंत्र राज्य में एक स्वतंत्र चर्च होना चाहिए" पोप के प्रभाव क्षेत्र को काफी नुकसान पहुंचाया कावुर ने पादरियों के विशेषाधिकार समाप्त कर दिये कानून के समक्ष सभी नागरिकों को समानता का अधिकार दिया । धार्मिक दलों को कुचल दिया और उनकी सम्पति को जब्त कर लिया । राज्य ने बीशप मनोनीत करने के अधिकार को त्याग दिया किन्तु यह अधिकार अपने पास रखा कि पोप के द्वारा नियुक्त किये हुए बीशपों की अनुमति देना और ना देना राज्य का कार्य होगा । बीशप और मठों के अनुदानों को जब्त नहीं किया गया बल्कि उनका प्रशासन राज्य के नियंत्रण में कर दिया गया । इस प्रकार का मिला-जुला सम्बंध चर्च और राज्य के बीच में स्थापित किया गया जिसमें एक ओर पुराने अधिकार क्षेत्र की बात थी तो दूसरी ओर नये उदारवाद को देखा जा सकता था । किन्तु सरकारी स्तर पर राज्य और चर्च एक दूसरे के विरूद्ध संघर्षरत रहे ।

17.8.3

पोप नये इटली के राज्य के लिए एक समस्या बना रहा मई 1871 में इटली की संसद ने गारन्टी की विधि पास की जो कावूर के स्वतंत्र चर्च और स्वतंत्र राज्य के सिद्धांत पर आधारित थी । पोप को वे सब निर्बाध्यताएं (Immunities) दे दी गई जो किसी राजा को प्राप्त रहती है और उसको वह सब औपचारिक आदर प्रदान कर दिये गये जो राजाओं को मिलते हैं जैसे सशस्त्र अंगरक्षक रखने की आज्ञा और लगभग तीस लाख लीरा (Lira) पोप ने जेब खर्च के लिए । पोप को अपने सभी धार्मिक कृत्यों को करने की पूरी छूट थी वह कैथोलिक ईसाईयों से सम्पर्क स्थापित कर सकता था । उसके दरबार में उपस्थित रहने वाले चार धार्मिक प्रतिनिधियों को भी कूटनीतिक निर्बाध्यताएं प्रदान कर दी गई । इटली की सरकार ने पोप को वह अधिकार भी सौंप दिये जिनका वह इटली के पादरियों पर प्रयोग करती थी । अब पोप को यह अधिकार भी प्रदान कर दिया गया कि वही सारे देश के लिए बीशप नियुक्त करेगा । किन्तु पोप पायस नवम् ने ना तो यह स्वीकार किया कि उसे चर्च का साम्राज्य अब उसके अधिकर में नहीं रहा और ना उसने गारंटीज की विधि को ही स्वीकार किया । पोप ने निष्क्रिय और असहाय असहयोग का मार्ग अपनाया और 1870 के बाद से तो वह अपने भवन से निकला ही नहीं । एक स्वयं बंदी बन गया अपने संतोष के लिए उसने मान लिया कि पोप कोई गलती नहीं कर सकता उसने कहा "मैं तुमको फिर बताना चाहता हूं कि तुमने मेरे और धर्म के विरूद्ध जो भीषण हिंसा की है उसका फल भोगने के लिए तुम अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहोगे ।"

पोप पायस नवम् का पोप काल बहुत दिनों तक चला और प्रसिद्ध भी रहा किन्तु इसी पोप के काल में पुन: पोप के अधिकारों में वृद्धि भी होने लगी । संसार भर में कैथोलिक मत वालों की उन्नति हुई । यह उन्नति समान रूप से अमेरिका और तुर्क साम्राज्य में, अफ्रीका और मेडागास्कर में, भारत और सुदूरपूर्व में हुई । कैथोलिक मत की सबसे अधिक उन्नति प्रोटेस्टेन्ट देशों में हुई । जिनमें होलैण्ड और इंग्लैण्ड प्रमुख थे । कई शताब्दी के बाद रोमन कैथोलिक पादरियों को कई यूरोपियन राज्यों में उच्च स्थान मिले ।

17.8.4 जर्मनी में सभ्यता का संघर्ष:-

1866 से बिस्मार्क, रोमन कैथोलिकों से जलता था । कारण यह था कि जर्मनी के रोमन कैथोलिक आस्ट्रिया के समर्थक थे । और प्रशा के प्रोटेस्टेन्ट राज्य परिवार के प्रति - शत्रुभाव रखते थे युद्ध में पोप ने खुले आम प्रार्थना की थी कि युद्ध में आस्ट्रिया की विजय हो । रोमन कैथोलिक चर्च उसी प्राकर नवीन जर्मन साम्राज्य से भेदभाव रखता था जिस प्रकार कि अनेक पोप सदैव जर्मन सम्राटों के विरूद्ध ऐसा करते थे । पोप का जर्मनी में भारी प्रभाव था और सर्वसाधारण पर भी । कैथोलिक दल एक राष्ट्र विरोधी संस्था थी जो राज्य के बाहर की सत्ता के आदेश ग्रहण करती थी । वह ग्रह नीति और विदेशनीति में बिस्मार्क के लिए बाधा उत्पन्न करते थे और पोप की सर्वोच्चता के समर्थक थे । जब यह सिद्धान्त स्थापित हुआ कि कोई राजा ऐसे राज्य में राजा ही नहीं है जिसमें कैथोलिक प्रजा निवास करती हो ।

बिस्मार्क' ने कहा था "पोप की निरभ्राता का सिद्धान्त ही राज्य के लिए भारी खतरा है । पोप ने अपने लिए मनमाने अधिकार सुराक्षेत कर रखे हैं । वह हमारी विधियों को निष्फल घोषित कर देता है ।

बिस्मार्क इस तत्व पर बल देता था कि रोमन कैथोलिकों का विरोध राजनैतिक महत्व रखता है । उसने कहा था यह संघर्ष प्रोटेस्टेन्ट राज्य परिवार और कैथोलिक चर्च के बीच नहीं है । यह संघर्ष धर्म और अधर्म के बीच भी नहीं है । यह तो उसी पुराने संघर्ष की पुनरावृत्ति है जिसमें ईसा को प्राण त्यागने पड़े थे । यह संघर्ष वास्तव में सत्ता हथियाने का संघर्ष है । इस संघर्ष में सभी तत्व जुट गये जो कैथोलिक चर्च के विरोधी थे । जब 1670 में वेटीकन परिषद ने यह आज्ञा पत्र निकाल दिया कि पोप के सब कार्य और सब निश्चय निर्दोष और निरभ्रांत होते हैं । तब तो संघर्ष अनिवार्य हो गया । कुछ जर्मन कैथोलिक ऐसे थे जिन्होंने पोप की निरभ्रांता के सिद्धान्त को मानने से इन्कार कर दिया और कुछ इसके समर्थक थे । इससे कैथोलिक पार्टी का विघटन होने की संभावना बढ़ी । जो पोप के निरभ्रातां के सिद्धान्त को अस्वीकार कर रहे थे उन्हें धर्म बहिष्कृत किया जाने लगा विश्वविद्यालयों से उनको निकाला जाने लगा । बिस्मार्क ने कैथोलिक दल की इन चुनौतियों को समझा और वह स्वयं कैथोलिक के विरूद्ध मैदान में उतर आया । 1873 में मई नियम पारित किये गये थे नियम कैथोलिकों के उपर भारी वज्रपात थे

इनके अनुसार सिविल विवाह को अनिवार्य कर दिया जो व्यक्ति पुजारी बनने के इच्छुक थे उनकी शिक्षा पर राजकीय नियंत्रण स्थापित कर दिया और उनके लिए कुछ राजकीय परीक्षाएं पास करना अनिवार्य कर दिया । किसी को धर्म बहिष्कृत करने का अधिकार नहीं दिया

गया, और यदि केथोलिक चर्च ने किसी व्यक्ति को कुछ दण्ड दिया गया हो तो ऐसे व्यक्ति को अपील का अधिकार दिया । समस्त कैथोलिक संस्थाएं राज्य के नियत्रंण में आ गई और राज्य के अधिकारी उनका निरीक्षण करने लगे । धार्मिक पुजारियों की नियुक्ति या राज्य अधिकार की परिधि में आ गये ।

पोप पायस नवम् ने यह घोषणा का कि मई नियमों का कोई मूल्य ही नहीं है । और उसने रोमन कैथोलिकों को आज्ञा दी कि वे उन नियमों के मानने से इंकार कर दें । बिस्मार्क भी पोप के बिरूद्ध मैदान में डटा रहा ओर उसने कहा "हम केनोसा (Canossa) नहीं जायेंगे और पोप के आगे नही झुकेगे ।" वर्चाऊ (Evirchow) ने कैथोलिकों के विरूद्ध चलने वाले इस सघर्ष नाम कुल्टुर्केम्प (cultureamph) रखा और यह संघर्ष पांच वर्षो तक चला । किन्नु 1878 में पोप पायस नवम् की मृत्यु होने पर लियो त्रयोदश (Leo XIII) नया पोप बना, तो बिस्मार्क ने भी कैथोलिकों के प्रति समझौतावादी और नरम रूख अपनाया । इस संघर्ष से बिस्मार्क को कोई लाभ नहीं हुआ । वास्तव में तो उसकी कठिनाइयों ही । नया पोप लियो त्रयोदश (Leo XIII) अधिक कूटनीतिज्ञ, निपुण और मध्यमार्गी था और वह बिस्मार्क से आधे मार्ग पर समझौता करने के लिए तैयार हो गया । यदपि पोप ने सिद्धान्तों पर समझौता नहीं किया बिस्मार्क ने कैथोलिक विरोधी नियमों को वापस ले लिया । पोप के साथ कूटनीतिक सम्बन्ध फिर से स्थापित कर लिए और धार्मिक संस्थाओं को फिर से स्थापित होने की अनुमति दे दी ।

जब बिस्मार्क ने इस प्रकार कैथोलिकों के आगे आत्म समर्पण कर दिया तो प्राचीन कैथोलिक की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई । कैथोलिक के साथ बिस्मार्क ने समझौता क्योंकि किया है? इसके कई कारण थे-

17.8.5 फ्रांस में कैथोलिक विरोधी कानून:-

ड्रिफ़्स काण्ड के फलस्वरूप फ्रांस की गणतंत्रीय शासन और चर्च के बीच संघर्ष उभर आया । वस्तुत: गणतंत्र की स्थापना. से चर्च और राज्य के सम्बन्ध बहुत तनावपूर्ण थे । गेनवेटा ने जोकि एक विख्यात गणतंत्रवादी था । 1870 में कह दिया था कि "पादरी गणतंत्र का शत्रु है" तभी से गणतंत्रवादी चर्च को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे, यदपि 1801 का धार्मिक समझौता अभी भी विद्यमान था, परन्तु अक्सर दोनों ओर से इसकी भावनाओं का उल्लंघन किया जाता था । वार्षिक धनराशि जो चर्च की अवश्यकता के लिये आवंटन की जाती थी वह चर्च की जरूरतों से बहुत कम होती थी और इसकी स्वीकृति भी अनचाही तरीके से भी दी जाती थी । धार्मिक मन्त्रालय में साधारणत: ऐसे लोग होते थे जो चर्च विरोधी होते थे और वे चर्च के कामकाज को इस तरह से रखते थे कि किसी प्रकार से मित्रतापूर्ण नहीं माना जाता था । फिर भी शासन और चर्च दोनों धार्मिक समझौते को बनाये रखने के इच्छुक थे । क्योंकि इस समझौते से चर्च को प्रतिष्ठा मिलती थी । क्योंकि राज्य की ओर से उसको मान्यता प्राप्त थी और थोड़ी बहुत आमदनी राज्य से हो जाती थी । शासन इसलिये समझौते को परस्पर करता था क्योंकि वे इस बात से डरते थे कि एक शस्त्रहीन राज्य में एक शस्त्ररत् चर्च है । इसका अर्थ यह था कि अगर गणतंत्र चर्च को अपने नियंत्रण और निरीक्षण से मुक्त कर दे तो वे

गणतंत्र के लिये बड़ा खतरनाक हो सकता था । फ्रांस के कैथोलिक पादरी आरम्भ से ही राजतंत्र वादियों के समर्थक थे और अपनी पाठशालाओं और अपने धार्मिक उपदेशों में गणतंत्र के आधारभूत सिद्धांतों की आलोचना करते थे चर्च के पास न केवल धार्मिक प्रभाव था बल्कि अपार सम्पत्ति भी थी । अत: वह गणतंत्र का विरोध करने में स्वयं को पर्याप्त शक्तिशाली समझता था । चर्च के व भिक्षुणियों की हजारों संस्थाए थी जो चर्च के पक्ष में प्रचार करती थी बुलंजिस्ट आंदोलन तथा ड्रीफ़्स काण्ड समय मं चर्च ने अपने आर्थिक प्रभाव व प्रचार साधनों का पूरा प्रयोग किया । चर्च का रवैया गणतंत्र के लिये संकटपूर्ण बन गया । राज्य व चर्च में एक अन्तिम संघर्ष स्वाभाविक था । पोप लियो XIII त्रेयोदश द्वारा फैन्च सरकार को प्रारम्भ मे मान्यता नहीं दी थी और जब मान्यता प्रदान की तो भी गणतन्त्र वादियों व पादरी वर्ग के बीच की पारस्परिक घृणा कम नहीं हुई । पोप ने अपने आज्ञा-पत्र 1892 में जारी किये, उसने फ्रांसीसी कैथोलिक पादरियों को याद दिलाया कि चर्च किसी एक प्रचार की शासन पद्धति के प्रति बचनबद्ध नहीं है । और जब एक सरकार गठित हो गई है तो उसे स्वीकार कर लेने की अनुमति नहीं बल्कि उसका कर्तव्य है । उसने गणतंत्र को स्वीकार करने का सुझाव दिया, इस प्रकार वह शासन के कैथोलिक विरोधी भावनाओं को ठण्डा करने की कोशिश करना था । कुछ फ्रांसीसी कैथोलिकों ने पोप के परामर्श को स्वीकार किया और गणतंत्र का समर्थन किया । इस समर्थन को Rattied कहा जाता है और सदन में इस प्रकार का दल बना, वह रेलिस कही जाने लगी लेकिन अधिकांश फ्रांसीसी कैथोलिक राजतंत्र समर्थक ही रहे और उन्होंने राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप करने पर पोप की निन्दा की ।

ड्रीफ्स मामले ने चर्च और गणतन्त्र के लिये एक विकट स्थिति उत्पन्न कर दी क्योंकि कैथोलिक ड्रीफ्स के मामले की पुन: सुनवाई का सक्रिय विरोध कर रहे थे । पहला विरोध भिक्षुओ, भिक्षुणियों ने किया जो ड्रीफ्स के विरूद्ध विशेषतौर से सक्रिय थे भिक्षु और भिक्षुणिए भिक्षा विभाग में काम करते थे । धार्मिक स्कूलों के साथ-साथ सार्वजनिक सरकारी विद्यालय भी कायम किये थे और इस तरह इन दोनों के बीच बहुत द्न्द् चल रहा था । इससे भी गणतत्रंवादी बहुत चिन्तित हुए और उन्होंने यह आरेप लगाया कि धार्मिक विद्यालयों में राजतंत्र समर्थक प्रवेश कर गये हैं । वॉल्डेक रूसों ने 1900 में एक भाषण दिया जिसमें जनमत को बहुत प्रभावित किया इस भाषण में उसने कहा कि परस्पर विरोधी शिक्षा पद्धति के कारण फ्रांसीसी जनता की नैतिक एकता खण्डित हो गई है । एक पद्धति सार्वजनिक विद्यालयों की है जिसमें क्रांति के गणतंत्रीय आदेशों की शिक्षा दी जाती है और दूसरी पद्धति की शिक्षण संस्थाऐं जिन पर चर्च का नियंत्रण है वह राजतंत्रीय पद्धति से प्रभावित है इस तरह की स्थिति असहनीय है । 1901 में सघं कानून (Law of Association) वॉल्डेक रूसों के मंत्रीमण्डल थे ने पास किया और घोषणा कर दी कि कोई भी संस्था चाहे धार्मिक हो या रानीतिक उसे सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक होगा जिस संस्था ने अधिकार पत्र या स्वीकृति पत्र ना लिया हो अथवा जिस संस्था को सरकार ने स्वीकृति पत्र ना दिया हो ऐसी संस्था का कोई सदस्य ना तो कोई शिक्षालय खोल सकता था ना ही शिक्षा का कार्य कर सकता था । इस आज्ञा से बहुत सी धार्मिक संस्थाऐ और लगभग दस हजार धार्मिक विद्यालय बंद हो गये । कैथोलिक पादरियों के हाथ से शिक्षा का नियंत्रण निकल गया ऐसी सभी संस्थाओं की सम्पत्ति और उनके मतों को

जब्त कर लिया गया । ये काम एक ऐसे मंत्री को सौंपा गया जो कट्टर चर्च विरोधी था । और वह कटिबद्ध था कि इस कानून का हर सम्भव तरीके से पालन किया जाए । लगभग हर उस धार्मिक संस्था ने जिसने स्वीकृति पत्र मांगा उसको स्वीकृति नहीं दी गई । बहुत कम संस्थाओं को यह स्वीकृति पत्र प्राप्त हुए । हजारों की संख्या में भिक्षु ओर भिक्षणिया बेघर और असहाय हो गई । 1904 में एक और नियम पारित किया गया जिसके द्वारा धार्मिक शिक्षण संस्थाओं से शिक्षा देने का अधिकार ही छीन लिया । इसके द्वारा यह आज्ञा भी जारी कर दी गई कि धार्मिक संस्थाएं या तो अपनी शिक्षा संस्थाओं को उदार और धर्म निरपेक्ष बनाएं अन्यथा वे अपनी शिक्षण संस्थाओं को तुरंत बन्द कर दे ।

उपरोक्त कठोर कानून शुरूआत की उस महत्वपूर्ण कानून की जिसके अन्तर्गत राज्य को चर्च से पृथक करना था 1 बहुत से गणतंत्रीय समर्थक लोक इस विचारधारा के बन गये थे कि राजय को धार्मिक विश्वासों के मामने में पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए और हर धार्मिक संस्था पर उसकी प्रभुसत्ता होनी चाहिए इसलिए लगभग हर गण्तंत्रीय दल का मोर्चा चर्च को पृथकीकरण था 1902 में चुनाव हुए और इसमें कैथोलिक विरोधियों को बहुमत प्राप्त हुआ चुनाव के बाद शासन ने इस समस्या का स्थाई निदान निकालने का प्रयास किया । एक बिल सदन में रखा गया जिसके अनुसार चर्च और राज्य को अलग-अलग किया गया था । इसको बनाने वाला ब्रियां था जो एक नौजवान समाजवादी नेता था । सदन में धार्मिक नीति पर गरमा-गरम बहस हुई क्योंकि ये एक ऐसा विधेयक था जिससे उस पद्धति का अंत हो रहा था जो फ्रांस में शताब्दियों से चली आ रही थी ।

ब्रियां अपने विधेयक का सबसे बड़ा समर्थक था उसने घोषणा की कि वह हर उस चीज का विरोध करेगा जो बहुत ज्यादा कैथोलिक विरोधी हो और जिसके अन्तर्गत चर्च का ही अन्त कर दिया जाए । उसकी दृष्टि सें "राज्य के सभी धर्मों के मामले में तटस्थ रहना चाहिए ये विधेयक धर्म विरोधी नहीं है, क्योंकि राज्य को ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं ये विधेयक केवल गैर धार्मिक है इसलिए राज्य को ना तो किसी धर्म को सताना चाहिए और ना उसका पक्ष लेना चाहिए । एक दूसरे समाजवादी नेता ने यह घोषणा की कि फ्रांस में धार्मिक शान्ति स्थापित करने का एक ही उपाय है और वह यह कि सभी धार्मिक चिन्ह पूर्णतया नष्ट कर देने चाहिए और राज्य को पूर्णतया धर्म निरपेक्ष बना देना चाहिए । 1801 के धार्मिक समझौते के द्वारा जो सार्वजनिक अधिकार चर्च को मिले हैं वह उससे छीन लेने चाहिए । चर्च समर्थक दल के नेता काऊन्टीमन ने यह कहा कि साधारणतया वह चर्च के प्रथ्थकीकरण का विरोधी है विशेषकर फ्रांस में जहां पर जनता का मिजाज इतिहास ओर परम्पराएं नागरिक और धार्मिक जीवन की एकता के आदर्श पर विश्वास करती हैं । जो विधेयक सदन में रखा गया है वह धर्म और ईसाईयत से घृणा पर आधारित है, इससे नैतिक व्यवस्था में परिवर्तन आऐगा और इससे अन्त में फ्रांस में ईसाईयत का खात्मा हो जाएगा । आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि फ्रांस और पोप के बीच जो धार्मिक समझौता हुआ है उसमें कुछ परिवर्तन किया जाए पोप की अनदेखी करके शासन ने बदले की भावना से कार्य किया है सद्भावना से नहीं उसने विधेयक की निन्दा करते हुए कहा कि एक लूट और अत्याचारी उपाय है । 1905 में ये विधेयक बहुमत से पारित कर दिया गया । इस विधेयक को प्रथक्करण कानून कहा गया । इस कानून द्वारा

1801 का धार्मिक समझौता भंग कर दिया गया । भविष्य में राज्य ना तो किसी धर्म को मान्यता देगा ना अनुदान देगा ना ही बिशपों को मनोनीत करेगा । अब तक फ्रांस में कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट और यहूदी चर्च सरकार से अनुदान लेते थे। अब वे स्वयं शासित और आत्मनिर्भर होगें । कहीं गतिरोध पैदा ना हो जाये इसलिए जीवन पेंशन दी गई जिन्होंने चर्च की लम्बी सेवाएं की थी । और कुछ लोगों. को सीमित अवधि के लिए भत्ता दिया गया । चर्च की सम्पत्ति की एक सूची तैयार की गई । और प्रत्येक जिले में उपासना समितियां तैयार की गई जिसमें पादरी सदस्य नही हों सकते थे और धार्मिक संस्थाओं की चल और अचल सम्पति का प्रबन्ध ये उपासना समितियां करती थी । चर्च के भवनों को राष्ट्रीय सम्पत्ति घोषित कर दिया गया किन्तु इनकी देखरेख उपासना समितियों के पास ही रही । चर्च के सभी विशेषाधिकार समाप्त कर दिये गये । किन्तु धार्मिक स्वतंत्रता की पूरी जमानत दी गई ।

चर्च ने सरकार की इस नीति का घोर विरोध किया पोप पायस दसम् ने प्रथ्थकरण कानून को चर्च के अधिकारों का उल्लंघन बताकर फ्रांस की कैथोलिक चर्चो का उसे ठुकरा देने का आदेश दिया । पादरी नये कानून के विरोध में मरने-मारने को उतारू हो गये । दो वर्ष तक फ्रांस में दंगे फसाद होते रहे । सरकार ने दृढ़ता पूर्वक चुनौती का मुकाबला किया राज्य में शान्ति तथा व्यवस्था बनाए रखी । पोप ने उपासना समितियों में सम्मिलित होने से लोगों को मना किया 1906 में क्लीमेन्सों संसदीय चुनावों के परिणाम स्वरूप प्रधानमंत्री बना इस चुनाव में पादरी प्रथा विरोधियों को पुन: बहुमत प्रदान किया और इस तरह स्पष्ट हो गया कि फ्रांस की अधिकांश जनता राज्य और चर्च के सम्बन्ध विच्छेद के पक्ष में है । नये प्रधानमंत्री ने जो गेम्बेटा का अनुयायी रह चुका था कट्टर चर्च विरोधी था । उसने इस कानून का कठोरता से पालन किया विशेषकर चर्च की सम्पति की सूचियां तैयार करने में । वफादार कैथोलिक की भीड़ चर्चो में जमा हो जाती थी । जिसमें अधिकारियों को चर्च में प्रवेश से रोका जा सके । कई अवसरों पर तो सैना को भी गड़बड़ करने वालों को तितर बितर करने के लिए काम में लिया गया । उपासना समितियां बनाने का समय निकल गया और ऐसा लगने लगा कि कहीं धार्मिक युद्ध ना प्रारम्भ हो जाए किन्तु ऐसा कुछ हुआ नहीं । शासन ने भी चर्चो को बन्द करने की जो धमकी दी थी इस धमकी को क्रियान्वित नहीं किया । क्योंकि इससे शासन अपने आपको अत्याचारी नहीं कहलवाना चाहता था । स्थिति को सुलझाने और कैथोलिकों को शान्त करने के लिए 1907 में एक कानून पारित किया गया जो 1905 के प्रथ्थकीकरण कानून का पूरक था । इसके द्वारा कुछ रियासतें दी गई । जिन जिलों में उपासना समितियां नहीं बनी थी उन जिलों में चर्चो और पादरियों के निवास स्थानों के प्रबंध करने का अधिकार पादरियों को ही दे दिया गया ।

फ्रांस के इतिहास में चर्च और राज्य के संघर्ष के महत्वपूर्ण परिणाम निकले । जिसके फलस्वरूप चर्च और राज्य का पृथ्यकीकरण पूर्ण हो गया फ्रांस का राज्य एक लौकिक राज्य बन गया । चर्च का शिक्षा देने का अधिकार समाप्त हो जाने से पादरियों का राजनैतिक प्रभाव घट गया । गणतंत्रीय फ्रांस में राज धर्म की सरकारी मान्यता की यूरोपियन परंपरा का अन्त कर दिया । फ्रांस के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण धार्मिक क्रांति थी जो चर्च और राज्य दोनों के लिए हितकारी सिद्ध हुई । सरकार को धार्मिक झगड़ों से फुरसत मिल गई और चर्च को भी राज

के निरंतर हस्तक्षेप से मुक्ति मिल गई । अल्पकाल के लिए राज्य और चर्च में तनाव बढ़ा किन्तु अन्त में दोनों की तनातनी कम हों गई और समय के साथ कैथोलिकों ने नवीन व्यवस्था को स्वीकार कर लिया । बहुत से कैथोलिक अब राजतंत्र समर्थक नहीं रहे । और उन्होंने उदारवादी दल का संगठन किया । और इस दल ने गणतंत्र को खुले-आम स्वीकार कर लिया । जब राजतंत्र वादियों को कैथोलिक समर्थन मिलना बंद हो गया तो वे फ्रांस की राजनीति में नग्न हो गये जिनको गणतंत्र वादी लोग से एक थैली की चार गोलियां कहते थे । ये पृथ्यकीकरण स्वेच्छा से नहीं हुआ था और अगणतंत्रीय कानूनों के द्वारा कैथोलिकों की आजादी को सीमित किया गया था । इसलिए ये कानून प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान और बाद में निरस्त कर दिये गये । यही परिस्थितियां युरोप के अन्य कैथोलिक राज्य में भी उत्पन्न हुई थी ।

यघपि चर्च और पोप इनमें पराजित दिखाई देते हैं किन्तु इस पराजय से भी उन्हें काफी लाभ पहुंचा । एक लाभ तो यह था कि पादरी जो अब तक राजनैतिक सत्ता से जुड़े हुए थे वे बन्धन अब ढीले पड़ गये थे । और उदारवादी विचार धाराओं से बड़े पादरियों को जीता नहीं जा सकता था वे इटली में शासन विरोधी बने रहे और फ्रांस में वैध वादी कहलाये । फ्रांस की सरकार ने जब उनको आर्थिक सहायता नहीं दी तो वे गरीब बन गये परन्तु उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली । राष्ट्रीय चर्च का विचार धूमिल हो गया और चर्च समर्थकवाद का जन्म हो गया Ultramonatism पोपाधिकार विधिया की भक्ति बढ़ गई । इटालियन लॉ ऑफ गारन्टीस के द्वारा पोप की सार्वभौम सत्ता को मान्यता दे दी गई और अब पोप एक लौकिक राजा के रूप में पहले से कहीं ज्यादा स्वतंत्र हो गया । पहली बार इतिहास में पोप स्वतंत्रता से कई देशों में बीशप और धार्मिक अधिकारी को चुन सकता था और नियुक्त कर सकता था । गणतंत्रीय अधिकारों का सहारा लेकर अपने भाषणों, प्रकाशनों और संघों की मदद से चर्च अपने हितों की रक्षा कर सकता था अपने पर किये जाने वाले आक्रमणों को रोक सकता था और हर जगह कैथोलिक शक्तियों को संगठित कर सकता था । इस तरह जहां उदारवाद ने चर्च को काफी नुकसान पहुंचाया किन्तु उसी समय उसको यह अवसर भी प्रदान किया कि वह अपनी स्वतंत्रता भी प्राप्त कर सकता है ।

मध्य और दक्षिणी अमेरिका में 19 वीं शताब्दी में नये धार्मिक समझौते हुए जिनके अन्तर्गत कैथोलिक धर्म को ना केवल राजधर्म ही घोषित किया गया और अन्य धर्मो को अवैध घोषित कर दिया गया बल्कि चर्च को शिक्षा पर पूर्ण नियंत्रण और प्रेस सेंसरिशिप और कई धार्मिक सुविधाएं प्राप्त हुई । राज की ओर से वित्तीय सहायता भी प्रदान की गई । इसके बदले में हर गणतंत्र के राष्ट्रपति को रिक्त बीशप के पदों पर अपनी तरफ से मनोनीत करने का अधिकार प्राप्त हुआ । ये धार्मिक समझौते ज्यादा समय तक नहीं चल सके और ना ही वहां की सरकारों ने उनको सम्मान दिया क्योंकि इन देशों में एक के बाद एक तानाशाही स्थापित हुई । इसलिए वर्तमान में इन राज्यों में धार्मिक स्वतंत्रता और धार्मिक सहिष्णुता की संविधान में जमानत दे दी गई है । किन्तु फिर भी कैथोलिक चर्च को विशेष सुविधाऐं प्राप्त धार्मिक समझौतों का सारा इतिहास समझौते का इतिहास है । इसकी शुरूआत सर्वप्रथम 1887 में पोप ल्यू तेरहवे ने अपने धर्म आज्ञाओं से प्रारम्भ की थी जिसके अन्तर्गत उसने चर्च को यह

सिखाया कि उसको हर राज्य को मान्यता देनी चाहिए और सम्मान देना चाहिए चाहे उसका स्वरूप कुछ भी क्यों ना हो । शर्त ये कि राज्य भी चर्च को मान्यता दे और उसको सम्मान दे।

17.8.6

आधुनिक युग में चर्च सभी धर्मो और सम्प्रदायों के प्रति उदासीन (Indifferent) रहता है शर्त है कि ये धर्म सम्प्रदाय कानूनों का सम्मान करे । चर्च गणतंत्रीय राज्य के प्रति उदासीन (Indifferent) रहता था । पोप ने इसका विरोध किया और यह कहा कि राज्य का स्वरूप कुछ भी हो । चाहे वह राजतंत्र हो या गणतंत्र हो रूढ़िवादी हो, शर्त ये हैं कि ये राज्य चर्च की स्वतंत्रता और बिशेषाधिकारों की जमानत दे । इस शिक्षा के कारण कैथोलिक पार्टियों का गठन हुआ ।

पायस ग्यारहवें (1922- 1939) के समय में आधुनिक युग में बहुत धार्मिक समझौते हुए। पौलेण्ड ने 1925 में, इटली ने 1929 में, आस्ट्रीया ने 1934 में, धार्मिक समझौते किये । जब ये समझौते कैथोलिक राष्ट्रों के साथ किये गये तो कैथोलिक धर्म को राजधर्म स्वीकार किया गया । किंतु अन्य धर्मो और सम्प्रदायों के प्रति सहष्णुता बरतने, के लिए कहा गया । सार्वजनिक स्कूलों में धार्मिक शिक्षा चर्च के अधीन अनिवार्य घोषित की गई ।

इसके अलावा जो विवाह विवादास्पद हो और तलाक संबंधी मामले से सबंधित हो उसके निर्णय का अधिकार चर्च को दिया गया । राज्य ने इस बात की जिम्मेदारी ली कि वह पादरियों ओर धार्मिक संस्थाओं को पूर्णतया या आंशिक सहायता प्रदान करेगे । इसके बदले में सभी पादरी सरकार के प्रति वफादारी की शपथ लेगें और सभी पादरियों को राजनीति में सक्रिय भाग लेने के लिए मनाकर दिया गया । इन समझौतों की सबसे विशेष बात यह थी कि पुराने समझौतों के विपरीत अब कोई भी राजा या हैड ऑफ स्टेट Head of State बीशप या किसी धार्मिक पद पर अनी ओर से किसी को मनोनीत नहीं करेगा । पोप ने इसके बदले में यह सुविधा थी वह नियुक्ति करने से पूर्व संबंधित राज्यों को नियुक्ति की सूचना दे देगा ओर यदि राजनैतिक आधार पर कोई आपत्ति हो तो उसको व्यक्त करने का अवसर मिल सकता था ।

अकैथोलिक राज्यों के साथ जो समझौते किये गये उसमें कैथोलिकों को उनकी संस्थाओं को और स्कूलों को पूर्ण स्वतंत्रता की जमानत दी गई । सार्वजनिक सेवाओं से पादरियों को मुक्त रखा गया । किसी-किसी राज्य में चर्चो को आर्थिक सहायता भी प्रदान की गई ।

ये मध्य युग से अब तक किये जाने वाले समझौतों में सबसे महत्वपूर्ण समझौते थे और चर्च के हित में सबसे ज्यादा थे । कोई भी आधुनिक गणतंत्रीय शासन इन तमाम धाराओं को अपने संविधान के मूलभूत सिद्धांतों का उल्लंघन करके स्वीकार नहीं कर सकता था । किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध से पहले जहां-जहां भी तानाशाह थे । उन्होंने ये धार्मिक समझौते किये और उन्होंने अपने राज्य संविधान की धज्जियां उड़ाई क्योंकि वे तानाशाह बने रहने के लिए चर्च का पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त करना चाहते थे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लगभग सारे धार्मिक समझौते रद्दी के टोकरे में डाल दिये गये । पायस ग्यारहवें के द्वारा किये गये समझौते में से केवल एक ही समझौता जीवित रहा जो 1929 में उसने फासिस्ट इटली के साथ किया था । जिसके अन्तर्गत पोप को वेटिकन सिटी का शासक मान लिया गया था ।

अमेरिका ने अपने संघीय संविधान में एक संशोधन किया वह संशोधन यह है कि कांग्रेस कोई ऐसा कानून नहीं बना सकती जिसके अन्तर्गत किसी धर्म को स्थापित किया जाए अथवा धर्म के पालन करने की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाया जाए । इस संशोधन को लेकर काफी विवाद उत्पन्न हुआ एक मान्यता तो यह है कि इससे चर्च और राज्य अलग-अलग हो गये । इसके विपरीत एक व्याख्या यह है कि शासन को मनाकर दिया गया कि कांग्रेस धर्म के मामले में किसी एक धर्म को दूसरे पर प्राथमिकता नहीं देगी । वर्तमान में धार्मिक स्वतंत्रता के सिद्धान्त को संसार के सभी संविधानों में मान्यता दे दी गई है । किन्तु अब यह देखने में आ रहा है कि चर्च और राज्य के बीच नये गठबंधन की शक्तिशाली विचारधारा पनप रही है । जिसमें एक तरफ तख्त होगा तो दूसरी तरफ ऑल्टर वेदी चाहे अब तख्त के स्थान पर गणतंत्र की आरामदेह कुर्सी ही क्यों ना हो।

17.9 बोध प्रश्न

(1) चर्च ओर राज्य के सम्बन्धों को कितने चरणों में विभाजित किया जा सकता है? उनमें से एक चरण की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।

(2) पोप गिरिगोरी के चर्च और राज्य सम्बन्धी विचारों को स्पष्ट कीजिए ।

(3) कांग्रेस ऑफ वियना के पश्चात् चर्च का प्रभाव कैसे व क्यों बढ़ा?

(4) चर्च के सम्बन्ध में नैपोलियन की क्या नीति थी और जो नीति उसने अपनाई उसके क्या परिणाम निकले?

(5) बिस्मार्क के सभ्यता के संघर्ष से आप क्या समझते हैं? विस्तार से समझाईये ।

(6) 1870 के पश्चात् चर्च ओर राज्य के सम्बन्धों की केन्द्र बिन्दू शिक्षण संस्थाएं थीं । स्पष्ट कीजिए ।

(7) यूरोप में धर्म निरपेक्षता का सिद्धांत किस प्रकार विकसित हुआ? भारत के धर्म निरपेक्षता के सिद्धांत से उसकी तुलना कीजिये ।

17.9.1 संदर्भ ग्रंथ

1. Brogan: Modern France.
2. Swain: Story of Civilization.
3. Lucas: History of Civilization.
4. Collior's Encyclopaedia.
5. David Thomson: Europe Since Napoleon.
6. Schapiro: Modern & contemporary European History.
7. Hugh Thomas: An unfinished History of the world.
8. C.J. Hayes: Modern Europe to 1870.

इकाई- 18

टर्की में समाज सुधार व युवातुर्क आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 टर्की में सुधार योजना

18.2.1 सुल्तान अब्दुल मजीद (1839-1861) और आन्तरिक सुधार कार्य

18.2.2 टर्की यूनान संघर्ष का प्रभाव

18.2.3 जर्मन प्रभाव में वृद्धि

18.2.4 मैसीडोनिया में सुधारों की समस्या

18.3 युवा तुर्क क्रान्ति जुलाई 1908.

18.3.1 आन्दोलन के कारण

18.3.1 अब्दुल हमीद का निरंकुश शासन 1873-1909.

18.3.2 यूनानी स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव

18.3.3 यूरोपीय राष्ट्रीयता का प्रभाव

18.3.4 अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का प्रभाव

18.3.5 युरोपीय राष्ट्रों का दृष्टिकोण

18.3.6 साहित्य का योगदान

18.3.7 राष्ट्रवादी नेताओं का योगदान

18.3.8 समितियों व संस्थाओं का गठन

18.4 आन्दोलन के उद्देश्य

18.5 घटनाकम

18.6 युवा तुर्को की समस्याएं

18.7 युवा तुर्क सुधार कार्य

18.7.1 जातिय संगठनों को अवैधकरार

18.7.2 व्रहत् आटोमन वाद

18.7.3 वृहत् मुस्लिम वाद

18.7.4 वृहत् तुर्कवाद

18.7.5 अन्य महत्वपूर्ण कार्य

18.8 युवातुर्क आन्दोलन एवं विश्व

18.9 असफलता के कारण

18.9.1 नीतियों के सुद्ढता का अभाव

18.9.2 प्रशासन की अनुभवहीनता

18.10 तुर्कीकरण की नीति का प्रभाव
18.10.1 विश्व राजनीति का प्रभाव
18.10.2 प्रभाव
18.10.3 टर्की में प्रजातंत्र का आरम्भ
18.10.4 सेवा में सुधार वादी दृष्टिकोण
18.10.5 जातिगत वैमनस्यता को प्रोत्साहन
18.10.6 अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव
18.11 आन्दोलन के बाद टर्की
18.12 सारांश
18.13 अभ्यास के लिये प्रश्न
18.14 संदर्भ ग्रन्थ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप:-

1. आटोमन साम्राज्य के उदय के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगें ।
2. टर्की साम्राज्य के क्षेत्रीय विस्तार के बारे में जान पायेंगे ।
3. टर्की के सुधार कार्यकमों के बारे में जानकारी करेंगे ।
4. टर्की युनान संघर्ष, जर्मन प्रभाव में वृद्धि एवं मैसीडोनिया सुधार कार्यकम की जानकारी कर सकेंगे ।
5. टर्की सुल्तान की गैर मुस्लिमों के प्रति कठोर नीति का विश्लेषण कर सकेंगे ।
6. युवा तुर्क आन्दोलन की पृष्टभूमि जान सकेंगे ।
7. युवा तुर्क आन्दोलन (1908) के कारणों का विश्लेषण कर सकेंगे ।
8. युवा तुर्क आन्दोलन के घटनाक्रम, असफलता के कारण व उसके प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे ।

18.1 प्रस्तावना

चौदहवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में एक तुर्क जाति में आटोमन या ओसमान के नेतृत्व में तुर्की या टर्की साम्राज्य की नींव रखी । उसी के नाम पर इस साम्राज्य को आटोमन साम्राज्य'' भी कहा जाता है । 1453 ई. तक तुर्की ने एशिया माइनर डार्डीनल सम्पूर्ण बाल्कन प्रदेश और कुस्तुतुनिया पर अधिकार कर लिया । शीघ्र ही टर्की साम्राज्य अरेबिया तथा मिश्र तक फैल गया। उत्तरी अफ्रीका के अनेक क्षेत्र इस साम्राज्य के अन्तर्गत आ गये । टर्की में ऐसे विशाल साम्राज्य की स्थापना हो गयी जो तीन महा द्वीपों एशिया यूरोप और अफ्रीका में फैला हुआ था। एशिया में मैसोपोटामिया, ईरान और अरब देशों में टर्की का राज्य था । पूर्वी यूरोप के बोसनिया, सर्बिया, यूनान, रोमानिया बलगेरिया आदि क्षेत्र इस साम्राज्य में थे । यूरोप के इस भू-भाग को बाल्कन कहा जाता है । जिसका विस्तृत उल्ले इकाई सं. 27 में हैं । अफ्रीका में मिश्र टर्की के साम्राज्य में सम्मिलित था । टर्की अपने इस विशाल साम्राज्य की रक्षा नहीं कर

सका और 19 वी शताब्दी के उर्द्ध में इसका पतन होने लगा । बार-बार यूरोपीय देशों ने टर्की को बचाने का प्रयास किया । टर्की के अस्तित्व की सुरक्षा के लिये 1908 में युवा तुर्क आन्दोलन हुआ लेकिन वह भी अन्ततः असफल रहा ।

18.2 टर्की में सुधार योजना:-

18.2.1 सुल्तान अब्दुल मजीद (1839-1861) और आन्तरिक सुधार कार्य-

15 जुलाई 1840 को ब्रिटिश विदेश मंत्री लार्ड पामर्स्टन ने टर्की पर फ्रांस व रूसीप्रभाव को रोकने के उद्देश्य से लन्दन में एक सम्मेलन बुलाया जिसमें इंग्लैण्ड रूस प्रशा व आस्ट्रिया ने भाग लिया । इस सम्मेलन का मुद्दा मिश्र के पाशा मेहमत अली की समस्या रही जिसने असन्तुष्ट होकर टर्की के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था । चारों राज्यों ने सामूहिक रूप से टर्की की सुरक्षा का आश्वासन दिया ।

मेहमत अली द्वारा लन्दन सम्मेलन की शर्ते स्वीकार नहीं की गयी चारो राष्ट्रों ने टर्की के समर्थल में मेहमत अली के विरूद्ध सैनिक कार्यवाही की । मेहमत अली को मिश्र राष्ट्रों के प्रस्ताव स्वीकार करने पड़े । सीरिया व क्रीट पुनः टर्की को प्राप्त हो गये । जुलाई 1841 में लन्दन में दूसरा सम्मेलन आयोजित किया गया । जिससे इंग्लैण्ड आस्ट्रिया रूस ने प्रशा ने भाग लिया । इस समझौते बाद 10 वर्षों तक टर्की में शान्ति बनी रही ।

1840-411 की घटनाओं के परिणाम टर्की के लिये महत्वपूर्ण साबित हुये । इस समय यूरोप के राष्ट्रों ने तुर्की सम्राज्य को अक्षुष्ण बनाये रखना स्वीकार किया । मेहमत अली ने यूरोपीय राजनीति से सन्यास ले लिया । उसकी सारी महत्वाकाक्षाएं समाप्त हो गई । टर्की के सुल्तान अब्दुल मजीद जो कि अपने पिता महमूद की मृत्यु के बाद 1837 में सुल्तान बना था, ने आन्तरिक सुधारों की ओर ध्यान दिया । 1841 से 1851 तक पूर्व में शान्ति बनी रही । निकट पूर्व में पामर्स्टन की नीति पूर्णतया सफल रही ।

सुल्तान अब्दुल हमीद ने अनुकूल परिस्थितियों का लाभ उठाकर सुधार के समर्थक रशीद पाशा की सलाह से सुधारों की एक वृहत् योजना बनायी और उसकी क्रियान्विति आरम्भ कर दी । सुल्तान ने सैनिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, स्थानीय शासन और शिक्षा के क्षेत्र में सुधार कार्य किये । लेकिन इसमें सुलान को सफलता नहीं मिली । जब सुल्तान ने धार्मिक पक्ष पात्र को समाप्त करके सभी धर्मों के मानने वालों को समान अवसर देने का निर्णय किया तो कट्टर पंथी मौलवियों और उलेमाओं ने कड़ी आलोचना करनी आरम्भ कर दी । इतिहासकार मेरियट लिखते हैं "ऐसे वातावरण में तुर्की के साम्राज्य में रहने वालों कैमोलिकों, ग्रीक वर्ग के अनुयायियों एवं मुसलमानों में पारस्परिक कटुता बढ़ता स्वाभाविक था" ("दी ईस्टर्न क्वश्चन") रूढ़िवादियों के विरोध के कारण सुल्तान की सुधार योजनाएं सफल नहीं हो सकी और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार पहले की तरह बना रहा । इससे जार को यह विश्वास हो गया कि "टर्की मरणासन्न है"

18.2.2 टर्की यूनान संघर्ष का प्रभाव:-

1897 में क्रीट को लेकर यूनान व टर्की के मध्य संघर्ष हुआ। बड़े राज्यों के हस्तक्षेप से 19 मई 1897 में युद्ध विराम की घोषणा हो गयी । इसके बाद ब्रिटिश प्रधान मंत्री सैलिसबरी ने रूस फ्रांस और इटली के सहयोग से संधि की शर्तें निश्चित की और तुर्की के सुल्तान को उन्हें मानने के लिए विवश किया । 4 दिसम्बर 1987 को कांसटेन्टीनोपोल में संधि पर हस्ताक्षर हुये। इसके अनुसार यूनान ने टर्की को 40 लाख रूपये युद्ध का हर्जाना देने का वचन दिया । थैसेली में अतिरिक्त भू-भाग तुर्की को नहीं मिला । परन्तु यूनान की क्रीट को सम्मिलित करने की महत्वाकांक्षा अधूरी रह गई । यूरोपीय राज्यों ने क्रीट की व्यवस्था अपने हाथ में ले ली । इस युद्ध में टर्की सेनाओं की विजय का यूरोप पर प्रभाव पड़ा । इससे बाल्कन राज्यों को मेसीडोनिया पर अधिकर करने का विचार कुछ समय तक स्थगित करना पड़ा । प्रो. लेंगर के अनुसार- "यूरोपीय राज्यों के समक्ष यह बात स्पष्ट हो गयी कि टर्की उतना निर्बल नहीं है, जितना कि उनका अनुमान था और निकट भविष्य में उसके विघटित होने की कोई सम्भावना नहीं थी"

18.2.3 जर्मन प्रस्ताव में वृद्धि

जर्मनी में कैसर विलियम द्वितीय के राज्यारोहण के बाद से ही 1889 से टर्की साम्राज्य में जर्मनी का प्रभाव बढ़ने लगा । 1889 में महारानी सहित सम्राट ने टर्की की यात्रा की । टर्की के सुल्तान अब्दुल हमीद ने उसका भव्य स्वागत किया । जर्मनी ने टर्की में व्यापार का प्रसार आरम्भ किया । जर्मन ड्यूत्स बैंक की एक शाखा कान्सटेन्टीनौपाल में स्थापित की । जर्मन पूंजीपतियों ने सुल्तान को कर्ज देकर हैदर पाशा से हस्मिद तक रेलें चलाने का अधिकार ले लिया । अंगारातक नई रेल लाईन तथा एस्की शहर से कोनिया तक रेल लाइन का अधिकार प्राप्त कर लिया ।

8 नवम्बर 1898 में विलियम केसर ने दमिश्क में अपने भाषण में कहा "मैं सुल्तान अब्दुल हमीद और 30 करोड़ मुसलमानों को जो उसे अपना खलीफा मानते हैं जर्मन का सुल्तान सदैव उनका मित्र बना रहेगा । (मैरयिट- दी ईस्टर्न क्वश्चन) 1902 में जर्मन कम्पनी "बगदाद रेलवे कम्पनी" ने सुल्तान से अनुबन्ध किया जिसके अनुसार उसे कोनिआ से अदाना, मोसुल और बगदाद होकर बसरा तक रेलवे लाइन का अधिकार दिया गया । इस रेलवे कम्पनी ने योजना की क्रियान्विति के लिये इंग्लैण्ड फ्रांस व टर्की से ऋण लेने का निश्चय किया । ऋण के बदले इंग्लैण्ड व फ्रांस के प्रतिनिधियों को रेलवे कम्पनी के संचालन मंडल में सम्मिलित करने का प्रावधान किया गया" ("बैन्स यूरोपीयन हिस्ट्री सि सं. 1870)

लेकिन ब्रिटेन फ्रांस व रूस तीनों ने इसका समर्थन नहीं किया और न ही क्रय की अनुमति दी । अत: 1908 में कम्पनी ने बगदाद से फारस की खाड़ी तक रेलवे लाइन बनाने की योजना त्याग दी । बगदाद रेल योजना से अन्तर्राष्ट्रीय तनाव में वृद्धि हुई ।

18.2.3 मैसीडोनिया में सुधारों की समस्या

यह ऐसा देश था जहां पर टर्की के आधिपत्य में तुर्क, बस्गर, यूनानी, अल्बानिया और यहूदी एक साथ रहते थे । अत: यहां पर सभी देश अपना प्रभाव बनाये रखना चाहते थे । बल्गेरिया यहां पर स्वायत्त शासन का अधिकार चाहता था ।

टर्की शासन में यहां की दशा दयनीय थी । अधिकारी यहां के ईसाइयों का शोषण करते थे और उन्हें उत्पीडित करते थे । बर्लिन कांग्रेस में टर्की ने मेसीडोनिया की दशा सुधारना का वर्णन दिया था परन्तु उसने कोई सुधार नहीं किये । इससे मैसीडोनिया में टर्की के विरूद्ध असंतोष बढ़ने लगा । बल्गेरिया ने इस असंतोष को प्रोत्साहित किया । टर्की में विरोध के लिए कई गुप्त समितियां बनी व 1893-95 में विद्रोह भी किये जो दबा दिये गए । 1899 ई0 में मैसोडोनियां समिति ने जिसका मुख्यालय बल्गेरिया में था, स्वायत्ता की मांग की लेकिन बड़े राष्ट्रों ने इस ओर ध्यान नही दिया ।

1900-1903 तक मैसीडोनिया में कई स्थानों पर विद्रोह हुए सुल्तान अब्दुल हमीद चिन्तित हुआ और सुधारों के लिए एक योजना तैयार की । लेकिन 1903 में मैसीडोनियनों ने आटोमन बैंक ध्वस्त कर दिया ओर कई व्यापारिक जहाजों को बम से उड़ा दिया गया । इससे यूरोपीयन राज्यों की सहानुभूति उनके प्रति नहीं रही । सुल्तान ने अवसर का लाभ उठाकर सेनाएं भेजकर अत्याचार पूर्ण तरीके से विद्रोह का दमन कर दिया । बल्गारिया ने बड़े राज्यों से मैसीडोनिया में हस्तक्षेप की मांग की आस्ट्रिया व रूस के सम्राट वियना के निकट मर्जास्तेग महल में मिले और मैसीडोनिया समस्या के समाधान के लिये एक सम्मिलित योजना तैयार की जिसे "मर्जास्तोग का कार्यक्रम" कहा जाता है । इस योजना के सुझाव निम्नलिखित थे ।

1. मैसीडोनिया में टर्की के इन्सपेक्टर जनरल के साथ आस्ट्रिया व रूस के प्रतिनिधि मिलकर ईसाईयों की कठिनाइयों की ओर सुल्तान का ध्यान आकर्षित करें । मैसीडोनिया में पुन: शान्ति व व्यवस्था स्थापित कर सुधार कार्यक्रमों की क्रियान्विति करें ।

2. विदेशी सेना नायकों व विदेशी अधिकारियों के अधीन पुलिस व्यवस्था का पुन: गठन किया जाए ।

3. मैसीडोनिया का प्रशासनिक व न्यायिक संस्थाओं का पुन: गठन किया जाए व प्रशासकीय इकाइयों का पुन: विभाजन किया जाए ।

4. ईसाईयों व मसलमानों की मिली जुली समितियां 1903 के विद्रोह के अपराधों की जांच करें और जलाये गये ग्रामों का एक वर्ष का कर माफ कर दिया जावे ।

5. टर्की के सुल्तान को प्रस्तावित सुधारों को यथा शीघ्र कार्यान्वित करना चाहिये । जी.पी.गूच" हिस्टी ऑफ मार्डन युरोप पृ. 337)

आस्ट्रिया व रूस के दबाब के कारण सुलान ने मर्जस्तेग योजना स्वीकार कर ली परन्तु यह योजना सफल नहीं हो सकी । 1905 में ब्रिटेन फ्रांस आस्ट्रिया व इटली ने मिलकर मैसीडोनिया में एक अन्तर्राष्ट्रीय वित्त आयोज की नियुक्ति करायी गयी जिसमें टर्की के इन्सपेक्टर जनरल के अलावा सभी प्रतिनिधि सम्मिलित किये गये । लेकिन सुल्तान ने बड़ी

शक्तियों की योजना की क्रियान्विति न होने के लिये हर सम्भव प्रयास किया । युवा तुर्क क्रान्ति के बाद नयी समस्या उत्पन्न हो गयी और मैसीडोनिया की ओर से ध्यान हट गया ।

18.3 युवा तुर्क क्रान्ति- जुलाई 1908

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विशाल टर्की साम्राज्य कमजोर होने लगा था टर्की की अव्यवस्था का लाभ रूस उठाना चाहता था । वह टर्की को बीमार राज्यों समझता था । रूस के जार अलेक्लेण्डर द्वितीय ने इंग्लैण्ड को इस प्रकार लिखा था- "हमारे हाथ में एक बीमार व्यक्ति है जो अत्यन्त बीमार है । मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि हमारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य होगा यदि वह हमारे द्वारा बिना प्रबन्ध किये हमारे हाथ से निकल गया ।

टर्की की गिरती हुई स्थिति से यहां का एक वर्ग चिन्तित होने लगा । 1873 ई0 में अब्दुल हमीद द्वितीय टर्की का सुल्तान बना । 1876 में इसने जनता को एक उदार संविधान प्रदान किया । लेकिन प्रतिक्रिया वादियों द्वारा विरोध किये जाने के कारण संविधान वापिस ले लिया । टर्की की स्थिति धीरे-धीरे इतनी दयनीय हो गयी कि वहां सुधार की आवश्यकता महसूस की जाने लगी पूर्व में तंजीमान सुधार काल में टर्की में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । मुराद पंवम भी स्थिति सम्भालने में असफल रहा । अब्दुल हमीद के शासनकाल में व्यवस्था के विरोध में टर्की के युवकों द्वारा आन्दोलन हुआ जो कि युवा तुर्क आन्दोलन के नाम से जाना जाता है । हेजन ने लिखा है "1908 ई. की ग्रीष्म में पूर्वी समस्या ने एक नया व विस्मयकारी रूप धारण कर लिया" व्राइने ने लिखा- "क्रान्तिकारी दल का "वास्तविक नाम एकता व प्रगति समिति "इतिहाद-ए-तरक्की" था । इसके सदस्य अपने आपको युवा तुर्क पुकारते थे अत: इसे युवा तुर्क आन्दोलनके नाम से जाना जाता है' (आटोमन एम्पायर इट्स रिकार्ड एण्ड लीजेसी)

18.3.1 आन्दोलन के कारण:-

18.3.1 अब्दुल हमीद का निरंकुश शासन- 1873-19०9:- 1876 में सुल्तान हमीद ने उदारवादी संविधान को प्रतिक्रियावादियों के विरोध के कारण वापिस ले लिया । उसके बाद वह अधिक निरकुंश व स्वेच्छाचारी हो गया । उसने संसद को भंग कर मन्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित कर दिया । उदारवादी नेता मिद्दत पाशा को सुल्तान अजीज की हत्या के जुर्म में फाँसी की सजा दे दी । किन्तु इंग्लैण्ड व फ्रांसीसी दवाब के कारण सुल्तान को यह दण्ड वापिस लेना पड़ा । परन्तु मिद्दम पाशा की हस्या करवा दी गयी । क्रान्तिकारी भावना को प्रोत्साहित करने वाले साहित्य पर टर्की में आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया । लेखन, व प्रकाशन पर सरकारी नियन्त्रण कठोर कर दिया । प्रेस पर प्रतिबन्ध लगाते हुए स्वतंत्रता एवं संविधान जैसे शब्दों पर प्रतिबन्ध लगा दिया । हमीद ने सूचनाएं एकत्र करने के लिये 40 हजार गुप्तचरों का जाल बिछा रखा था, जो सदैव तुर्की में घूमा करते थे । सुल्तान के "पान इस्लामिज्म प्रचारक" प्रभावशाली व्यक्तियों की हत्या में महत्वपूर्ण भूमिका थी ।

अब्दुल हमीद की इस निरंकुशता नें जन साधारण को हिला कर रख दिया । खिन्न होकर उदारवादी वर्ग सुधार कार्यों पर विशेष ध्यान देने लगे । वे टर्की की वैधानिक प्रगति

देखना चाहते थे । तुर्की से निर्वासित उदारवादियों ने जेनेवा में 1890 में एकता की प्रगति समिति का गठन किया ।

18.3.2 यूनानी स्वतंत्रता संग्राम का प्रभाव

यूनान के स्वतंत्रता संग्राम की सफलता अपने राज्य में सुधार व प्रतिष्ठा की पुन: स्थापना के उद्देश्य से एक समिति बनायी थी । उस समय टर्की के सेनापति खलील पाशा ने कहा था - "मुझे विश्वास हैं कि हम शीघ्र ही यूरोपीय ढंग से सुधार नहीं करते तो हमें एशिया में वापस जाने के लिये तैयार रहना चाहिये" ।

(मेरियट - "ईस्टर्न क्वश्चन" यही शब्द युवा तुर्क आन्दोलन की उप्तत्ति के मूल स्रोत थे।

18.3.3 यूरोपीय राष्ट्रीयता का प्रभाव

इस समय सम्पूर्ण यूरोप में राष्ट्रीयता की लहर चल रही थी । 1830-48 की क्रान्तियां हुई, 1870 में जर्मनी व इटली का एकीकरण हुआ । इन घटनाओं ने टर्की के युवा वर्ग को प्रोत्साहित किया ।

18.3.4 अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का प्रभाव-

1877 में रूस टर्की युद्ध में टर्की की पराजय हुई थी । मार्च 1878 में सेनस्टीफेनों की संधि के द्वारा रूस ने टर्की को अपना संरक्षित राज्य की तरह बना दिया था । उसे अपने विशाल साम्राज्य के बहुत बड़े भू-भाग से वंचित होना पड़ा । 1878 की जार्ज ने संधि के द्वारा यधपि रूस के लाभों को कम कर दिया था । परन्तु उससे टर्की का विघटन कम नहीं हुआ था । इससे टर्की में असंतोष उत्पन्न हुआ । अत: राष्ट्रीवादी नेताओं ने टर्की की गिरती हुई स्थिति को उभारने के लिये हमीद के निरंकुश शासन की समाप्ति करना चाहते थे ।

18.3.5 यूरोपीय राष्ट्रों का दृष्टिकोण:-

यूरोप की महान शक्तियों ने टर्की को बीमार राज्य मानकर अपने हितों के संवर्द्धन के लिये टर्की का शोषण किया । आस्ट्रिया, जर्मनी एवं इंग्लैण्ड ने टर्की में हस्तक्षेप करके अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया । यह हस्तक्षेप उतना बढ़ गया कि बर्लिन संधि में यूरोपीय राष्ट्रों ने टर्की के भाग्य का निर्णय किया । और टर्की ने उसे स्वीकार भी किया । टर्की के उदारवादी नेता इस विदेशी प्रभाव की समाप्ति चाहते थे ।

18.3.6 साहित्य का योगदान

यूरोप के राष्ट्रवादी साहित्य का भी टर्की के युवा वर्ग पर प्रभाव पड़ा । टर्की से प्रकाशित समाचार-पत्रों में मेशवर्त मीजान एवं तरक्की जैसे समाचार पत्रों एवं प्रकाशनों ने युवा तुर्क आन्दोलन की पृष्ठ भूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया ।

18.3.7 राष्ट्रवादी नेताओं का योगदान

युवा तुर्क आटोमान साम्राज्य को नवजीवन प्रदान करके पश्चिमी ढंग पर उसका पुन: गठन करना चाहते थे । वे टर्की में संसदीय संविधान, बौद्धिक एवं धार्मिक स्वतंत्रता के सिद्धान्त की घोषणा और प्रेस की स्वतंत्रता की स्थापना करना चाहते थे । इसके साथ ही वे शिक्षा का प्रसार, व्यापार वाणिज्य का प्रसार, व मध्यकालीन कुरीतियों का उन्मूलन करने के इच्छुक थे । प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं ने अहमद रिजा मुरादवे आगस्ट कॉम्स, कमाल, इब्राहीम तेमों, इमिल दुरवाइम, हेनरी वर्गसन सहबाहलद्दीन विशेष उल्लेखनीय हैं ।

18.3.8 समितियों व संस्थाओं का कठन

टर्की के उदारवादी इस तथ्य से भलिभांति परिचित थे कि उन्हें सुल्तान अब्दुल हमीद के निरकुंश शासन को समाप्त करना है तो संगठित होना आवश्यक है । युवक तुर्को ने टर्की साम्राज्य के विभिन्न भागों में गुप्त समितियां स्थापित कर अपने कार्यक्रम का प्रचार किया ।

(I) एकता व प्रगति समिति:- टर्की के निर्वासित देश भक्तों ने टर्की के बाहर रहकर ही स्वयं को संगठित करना आरम्भ कर दिया । 1889 में इस्तामबूले नामक स्थान पर इम्पीरियल मिलिटरी व कालेज में इब्राहिम तेमों के नेतृत्व में एक गुप्त समिति का गठन किया जो एकता व प्रगति समिति के नाम से जानी जाती है । इसका कार्यालय जेनोवा में रख गया । टर्की के निर्वासित देश भक्तों ने जेनोवा या पैरिस जाकर समाचार पत्रों व पत्रिकाओं के मासध्यम से "टर्की को पतन के बचाने" का प्रचार आरम्भ कर दिया । अहमतद रिजा मुरादवे को समिति का सभापति बनाया गया । 1898 में सुल्तान हमीद की समाप्ति हेतु एक प्रस्ताव पारित किया गया । सुल्तान ने सुधार योजना का आश्वासन देकर मुदरादवे को इसताम्बूल बुलाकर कैद कर लिया इससे समिति को थोड़ा आघात लगा लेकिन तुर्की नेतृत्व कर्ताओं ने अपने को कमजोर नहीं होने दिया ।

(II) ओस्मानली- यह समिति भी 1897 टर्की में बाहर जेनोवा में गठित की गयी थी । 1902 में आटोमन साम्राज्य के उदारवादियों का एक सम्मेलन आयोजित किया गया । इस सम्मेलन में अरब, यूनानी, आर्मेनियन व तुर्क आदि ने मिलकर एक संघ बनाने का प्रयास किया जिसका मुख्य उद्देश्य 1876 के संविधान को क्रियान्विति करना था ।

(III) टर्की में गठित संस्थाएं:- अब तक उदारवादियो द्वारा टर्की के बाहर संगठन बनाये जा रहे थे । टर्की साम्राज्य के भीतर क्रान्ति का वातावरण बनाना जरूरी था । मुस्तफा कमाल ने दमिशक में 'वतन" नामक क्रान्ति कारी संस्थान का गठन किया और सैलोनिका में इसकी विभिन्न शाखाए खोली गयी ।

सैलोनिका सेना की तीसरी कोर ने इससे प्रोत्साहित होकर "ओसमाली हूर्रियत जामियत" नामक दल की स्थापना की ।

कालान्तर में इन सभी संगठनों को मिला दिया गया व एकता व प्रगति संगठन को मजबूत किया और पैरिस के क्रान्तिकारी कार्यवाही की जाने लगी ।

18.4 आन्दोलन के उद्देश्य

युवा तुर्की के दो प्रमुख उद्देश्य थे:-

(I) वे टर्की को लोकतांत्रिक ढंग पर गठित करना चाहते थे टर्की में संविधान हो, संसद हो धर्म और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो आदि । लिम्पसन ने लिखा है । "युवा तुर्क संवैधानिक व राष्ट्रीय भावनाओं से प्रभावित थे ।"

(II) टर्की विदेशी प्रभाव से मुक्त हो तथा टर्की की अपनी राष्ट्रीय नीति हो । वै तुर्की की गिनती विश्व के महान राष्ट्रों में करना चाहते थे । कैटलबी के अनुसार "युवा तुर्क टर्की का स्थान विश्व में प्रगति शील देशों के मध्य एक महान साम्राज्य के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे । और यह सब तुर्की के विदेशी हस्तक्षेप से मुक्ति पर ही सम्भव था"

(III) टर्की की एकता व अखण्डता की रक्षा करना । यहाँ पर विभिन्न जातियां व अलग-अलग धर्मो के लोग निवास करते थे । अत: टर्की की एकता की रक्षा करना इनका मुख्य उद्देश्य था । लिप्सन ने लिखा है "युवा तुर्क पतनोंज़ख तुर्की साम्राज्य को संगठित कर उसे नवजीवन प्रदान करने के इच्छुक थे और आटोमन साम्राज्य में एकता स्थापित करना चाहते थे इतिहास कार ल्यूक के अनुसार "टर्की साम्राज्य का यह नवीन शासक दल टर्की में न्याय, स्वतंत्रता व बन्धुत्व की स्थापना करना चाहता था ।" (मेकिंग ऑफ मॉर्डन टर्की) ।

(IV) युवक तुर्क टर्की के आधुनिकी करण के पक्षपाती थे वे निवास और प्रगति के समर्थक थे । विभिन्न विविधताओं को नष्ट कर परिवर्तन के पक्षधर थे । पश्चिमीकरण के समर्थक थे ।

18.5 घटनाक्रम

1908 में इंग्लैण्ड व रूस ने टर्की सुल्तान पर सुधारों का दबाव डालने लगे युवा तुर्को को यह हस्तक्षेप कष्टदायक लगा वे इस हस्तक्षेप को समाप्त करना चाहते थे । 3 जुलाई 1908 को अनवर के व अहमद नियाजी नामक सैनिक अधिकारियों ने विद्रोह कर दिया । विद्रोह दमन के लिये सुल्तान ने शक्सी पाशा को भेजा परन्तु उसकी हत्या कर दी और सेना विद्रोहियों के साथ मिल गयी । 6 जुलाई को मोनिस्टर में विद्रोह हो गया । मैसीडोनिया, एर्जेरम बिटलिस, इज्यीर तथा इस्तमबुल में प्रदर्शन हुये । सेलोनिका में टर्की के लिये नवीन सरकार व संविधान के गठन की घोषणा की । सुल्तान ने 1876 संविधान को पुन: लागू करने की घोषणा की व ससंद का अधिवेशन भी आंमत्रित किया । वेने ले लिखाहै "23 जुलाई 1908 को सुल्तान अब्दुल हमीद ने संविधान की कठिबद्धता संसद को बुलाने व प्रेस की स्वतंत्रता देने का वचन दिया" (आटोमन एम्पायर इट्स रिकार्ड एण्ड लीगेसी "मेटियर के अनुसार" उसने धर्म और जाति के भेद भाव के बिना अपने साम्राज्य की प्रजा को वैयक्तिक स्वतंत्रता और समान अधिकार देने की घोषणा की । समाचार पत्रों का प्रतिबन्ध समाप्त कर दिया और 40 ,000 गुप्तचरों को हटा दिया"

17 दिसम्बर 1908 को सुल्तान ने नई संसद का अधिवेशन बुलाया । निम्न सदन चेम्बर ऑफ डिपुटीज का चुनाव जन साधारण के द्वारा किया गया था और उच्च सदन सीनेट

के सदस्यों को सुल्तान ने मनोनीत किया था । क्रिमियल पाशा के नेतृत्व में नया मंत्री मंडल गठित किया गया । मैसीडोनिया तथा यूरोपीय राज्यों ने विशेषकर इंग्लैण्ड ने इस परिवर्तन का स्वागत किया ।

क्रिमियल पाश ने सुधार योजना की क्रियान्विति का प्रयास किया परन्तु तुर्की साम्राज्य के एशियाई भाग के पाश्चात्य ढंग से सुधारों को क्रियान्वित करना कठिन हो गया था । फरवरी 1909 में क्रिमियल पाशा ने त्याग पत्र दे दिया । उसके स्थान पर- हिलरी पाशा प्रधान मंत्री बना लेकिन उसे भी सफलता नहीं मिली । स्वयं सुल्तान सुधारों की क्रियान्विति नहीं चाहता था । अत: उसने समानान्तर क्रान्ति को प्रोत्साहित किया । हजारों तुर्की युवा तुर्की के विरोधी हो गये । क्रान्ति का जोश ठण्डा देखकर सुल्तान अब्दुल हमीद ने 13 अप्रैल को सेना की सहायता से पुन: निरंकुश स्थापित कर दिया । किन्तु सुल्तान की यह सफलता क्षणिक सिद्ध हुई । 24 अप्रैल 1909 को महमूद शेवकत के नेतृत्व में युवक तुर्की की एक सेना सेलोप्कि से चलकर कॉन्सटेटीनोपाल में प्रविष्ट हो गई व राजधानी पर अधिकार कर लिया । मेरियट के अनुसार "27 अप्रैल को तुर्की की राष्ट्रीय सभा ने सर्व सम्मति से प्रस्ताव पारित कर अब्दुल हमीद को गद्दी से हटा दिया और उसके भाई मोहम्मद पंचम को सुल्लान घोषित कर दिया" - दी ईस्टर्न स्वश्चन" हिल्मी पाशा पुन: प्रधान मंत्री बने । इसका मुस्लिम यूनानी सर्व बल्गेरियन अर्मेनियत, अल्बानियन, आदि सभी ने स्वागत किया । इसीलिये इतिहासकार हेजमेन लिखा है- "आधुनिक इतिहास में यह सबसे अधिक बन्धुत्व पूर्ण आन्दोलन था"

18.6 युवा तुर्को की समस्याऐं:-

युवा तुर्की को शासन संचालन का अनुभव नहीं था ।

यूरोपीय देशों का रोष सहना-बल्गेरिया ने स्वत: ही अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया । 1991 में ट्रिपोली पर इटली का अधिकार हो गया । बोस्निया हर्जीगोविनापर आस्ट्रिया ने कब्जा कर लिया तथा यूनान ने क्रीट पर अधिकार कर लिया ।

18.7 युवा तुर्क सुधार कार्यक्रम:-

18.7.1 जातिय संगठनों को अवैध करार

विभिन्न जातिय व राष्ट्रीय नामों के राजनैतिक संगठन युवा तुर्को की धारणा के अनुसार टर्की की अखण्डता व एकता के लिये खतरा थे । अत: 16 अगस्त 1909 को समिति सरकार ने संगठन का कानून पास करके इन्हें अवैध घोषित कर दिया I 27 अगस्त 1909 को डकैती निरोधक कानून पारित किया गया । संगठनों को कुचलने के लिये सैनिक दस्ते भी बनाये परन्तु युवा तुर्को का यह कार्य सफल नहीं हो पाया गिबन्स से लिखा मैसीडोनिया तथा एशिया माइनरर में 30,000 ईसाइयों की हत्या कर दी गयी"

18.7.2 वृहत ऑटोमनवाद

इसका तात्पर्य सम्पूर्ण ऑटोमन साम्राज्य को एकता के सूत्र में बांधना था । इस उद्देश्य से युवा तुर्की ने जो नीति अपनायी वह पान आटोमैलिज्म के नाम से जानी जाती है । इसके

लिये सर्वप्रथम उन्होंने सम्पूर्ण जनता को कानून के समक्ष समा न घोषित करते हुये मानवाधिकारों की घोषणा की । टर्की को लोकतांत्रिक राज्य बनाने के लिये प्रजातांत्रिक संस्थाओं का विकास किया । संसद की स्थापना करके, उसे दो सदनों (प्रतिनिधि सभा व सीनेट) में विभाजित किया । संसद देश के लिये कानूनों का निर्माण करती थी । समान शिक्षा पद्धति लागू की ।

युवा तुर्की की उक्त नीति सफल हो जाती तो तुर्की के लिये बरदान सिद्ध होती, परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों में वृहत ऑटोमनवाद की नीति असफल रही । इसका मुख्य कारण तुर्की का विचित्र प्रकार का संगठन था । अब्दुल हमीद के शासन काल में वृहत इस्लाम वाद के द्वारा मुसलमानों को जो विशेष अधिकार मिल गये थे वह उन्हें कैसे छोड़ सकती थी । अत: उन्होंने अरेबिया में पान ऑटोमनवाद के विरूद्ध "मोहाबी आन्दोलन" छेड़ दिया । ब्लगेरियन युनान व रूमानिया की जनता अपनी राष्ट्रवादी भावना के कारण युवा तुर्की से नाराज थे ।

18.7.3 वृहत् मुस्तिम वाद

युवा तुर्को ने मुस्लिम वर्ग को अपने समर्थन में लेने के उद्देश्य से मुस्लिमों को विशेष सुविधाएँ देकर कार्य करने का प्रयास किया । तुर्की की यह नीति "वृहत् इस्लामवाद के नाम से जानी जाती है । इस, नीति का जनक अब्दुल हमीद द्वितीय ही था । शिक्षा कानून व प्रशासन में मुस्लिम वर्ग को विशेष अधिकार दिये । परन्तु इस नीति से एकता की अपेक्षा करना मूर्खता थी क्योंकि टर्की में निवास करने वाली गैर मुस्लिम जातियों ने युवा तुर्की को अपना शत्रु समझना आरम्भ कर दिया । इसमें भी युवा तुर्क असफल रहे ।

18.7.4 वृहत तुर्कवाद

उक्त दोनों नीतियों में असफल होने के बाद युवा तुर्को ने इस बात पर बल देना आरम्भ कर दिया कि केवल तुर्की के सहयोग से ही एकता स्थापित हो सकती है क्योंकि विदेशी आक्रमण के समय तुर्क मुसलमानों का ही सहयोग प्राप्त हुआ था । यह नीति बृहत् तुर्कवाद या "यासी तुरानिज्य" के नाम से जानी जाती है । तुर्की को उन्होंने विशेषाधिकार प्रदान किये परन्तु इसमें भी उन्हें सफलता नहीं मिली ।

18.7.5 अन्य महत्वपूर्ण कार्य:-

देश की शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन किया गया । एकता के उद्देश्य से सम्पूर्ण देश में समान शिक्षा पद्धति लागू की ।

तुर्की को राजभाषा घोषित किया ।

प्रान्तीय प्रशासनिक पद्धति को अपनाया । पुलिस ने नगरपालिका की व्यवस्था में सुधार किये। अग्निशमन दल, नालियों की व्यवस्था व सफाईकर्मचारियों की व्यवस्था आटोमन साम्राज्य की मुख्य देन है ।

भूमि सुधार विशेष उल्लेखनीय है । जमींदारी प्रथा को समाप्त किया 1917 में स्थापित राष्ट्रीय बैंक को पूर्व की ही युवा तुर्क द्वारा स्थापना का निश्चय किया जा चुका था ।

दो बीमा कम्पनियों की स्थापना युवा तुर्की द्वारा की गयी ।

समाज शास्त्रियों को विशेष, सम्मान दिया जाने लगा । अहरद रिजा व सट्टीबुद्दीन महत्वपूर्ण विचारक थे । अब्दुल्लाह जोदत ने इजतिहाद नामक पत्रिका में "जागरित निन्दा" नामक शीर्षक के अन्तर्गत तुर्की की सामाजिक स्थिति का चित्रण खींचा था । वह महत्व पुर्ण था ।

युवा तुर्क आन्दोलन एवं विश्व:-

18.8 युवा तुर्क आन्दोलन के जोश और उनके उद्देश को देखकर विश्व चौकन्ना हो गया । युवा तुर्की को अपनी आन्तरिक नीति मे जब असफल होते देखा तो युरोपीय राज्यों ने अपनी गतिविधियां तेजकर दी । आस्ट्रिया ने बोसनिया वह हर्जीगोविना को हस्तगत कर लिया । उधर बलगेरिया ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया ।

इस घटना क्रम में टर्की साम्राज्य में उथल उथल आरम्भ हो गयी । 1911 में चार बाल्कन राज्यों सार्केया बलगेरिया, मान्टीनीग्रो और यूनान ने टर्की पर आक्रमण कर दिया जिसमें युवा तुर्क पराजित हुये । 1913 में दूरसरा बाल्कन युद्ध हुआ । टर्की साम्राज्य अब डार्डेजलीज, बास्फोरस और कुस्तुतुन तुनिनिया तक ही सीमित रह गया ।

युवा तुर्की ने शासन काल में प्रथम युद्ध महायुद्ध आरम्भ हुआ । टर्की ने जर्मनी के साथ मित्र राष्ट्रों के विरूद्ध युद्ध में भाग लिया । युवा तुर्क सरकार को प्रत्येक मोर्चे पर युद्ध में असफलता का मुहँ देखना पड़ा अन्तत: 10 अगस्त 1920 के मित्र राष्ट्रों से सेब्र की संघि करनी पड़ी ।

इस प्रकार युवा तुर्क आन्तरिक दृष्टि से और वाह्य दृष्टि से समस्याओं का समाधान करने के पूर्णत: असफल रहे । इससे जनता और अधिक सत्रस्त हो गयी ।

सामान्य जनता के दृष्टिकोण के सम्बन्ध में एच.ए. गिबन्स लिखता है-

"युवा तुर्क अब्दुल हमीद की प्रतिष्छाया मात्र थे । वे अब्दुल हमीद की अपेक्षा अधिक खराब थे"

18.9 असफलता के कारण:-

18.9.1 नीतियों में सुदृढ़ता का अभाव

युवा तुर्क किसी एक नीति पर दृढ़ नहीं रहे । उन्होंने समय समय पर आटोमनवाद, इस्लाम वाद व तर्कवादी का सहारा लिया । कभी मुसलमानों को प्रसन्न किया तो कभी उन्हें अप्रसन्न करने की नीति अपनायी । यह सब उनकी अदूरदर्शिता व संकल्प नीति के अभाव के कारण हुआ । इससे सभी वर्ग असन्तुष्ट हो गये ।

18.9.2 प्रशासन की अनुभव हीनता

युवा तुर्क अच्छे प्रशासक नही थे । तुर्की साम्राज्य में विभिन्न जातियां धर्म परम्पराएं थी । ऐसी स्थितियों में विकेन्द्रीकरण के आधार पर संघीय शासन व्यवस्था की स्थापना की जाती थी युवा तुर्को ने इसके स्थान पर केन्द्रीय करण की नीति अपनायी ।

18.10 तुर्की करण की नीति का प्रभाव

टर्की में जाति, भाषा एवं सांकृतिक विभिन्नता थी । ऐसी परिस्थितियों में युवा तुर्को की तुकीकरण की नीति का सफल होना सम्भव नहीं था । गैर तुर्की में असंतोष हुआ । यूनानी पैट्कं ने इस समय कहा था "वे हमारे साथ कुत्तो जैसा व्यवहार कर रहे हैं ।"

18.10.1 विश्व राजनीति का प्रभाव

उस समय की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ भी युवा तुर्कों की असफलता के लिये उत्तरदायी थीं । टर्की की कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर आस्ट्रिया ने बोस्नियां, हर्जीगोविना पर अधिकार कर लिया । 1912-13 के बाल्कन युद्धों ने भी काफी क्षति पहुंचाई । प्रथम विश्व युद्ध के पराजय के बाद की गई सब्र की संधि और अधिक घातक सिद्ध हुई ।

18.10.2 प्रभाव

यदपि यह आंदोलन सफल नहीं रहा, लेकिन इसने केवल तुर्की को ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया ।

18.10.3 टर्की में प्रजातंत्र का आरम्भ

इस आन्दोलन ने टर्की में एकतमात्मक निरकुंश शासन परम्परा को तोड़ने का कार्य किया । सर्वप्रथम 1907 ई. में संसदीय शासन की शुरूआत युवा तुर्की द्वारा ही की गयी । सुल्तान के पैतृक अधिकार में युवा तुर्की ने ही चुनौती दी ।

18.10.4 सेना में सुधारवादी दृष्टिकोण

युवा तुर्क आन्दोलन ने सेना का प्रयोग जिस प्रकार सुल्तान के विरूद्ध प्रयोग में सफलता अर्जित की इससे यह स्पष्ट हो गया कि सेना सुल्तान के प्रति अन्ध भक्ति नहीं रख सकती । जनवादी आन्दोलन में सेना सुधारकों को भी सहयोग दे सकती है ।

18.10.5 जातिगत वैमनस्य को प्रोत्साहन

आरम्भ में युवा तुर्की ने न्याय स्वतत्रता एवं बन्धुत्व की बात कही थी । परन्तु अपनी नीतियों में असफल होते देख उन्होने नये-नये प्रयोग करना आरम्भ कर दिया । इससे जनता में असंतोष हुआ और इस असंतोष को दबाने के लिये युवा तुर्क अनुदार एवं असहिष्णु बन गये । इससे आपसी वैमनस्य विकास हुआ ।

18.10.6 अन्तर्राष्ट्रीय प्रभाव

युवा तुर्की की अनुदारता के कारण कई गैर तुर्क विदेशों में चले गये और वहां पर तुर्की के विरूद्ध प्रचार करना आरम्भ कर दिया । तुर्कीकरण की नीति ने आन्तरिक विद्रोहों को जन्म दिया । 5 अक्टूबर 1908 को बल्गेरिया ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया । 7 अम्बर 1908 को आस्ट्रिया ने बोस्निया व हर्जीगोबिना पर अधिकार कर दिया । आस्ट्रिया की यह कार्यवाही 1878 की बर्लिन संधि का उल्लंघन था । बर्लिन संधि के उल्लंघन के कारण ही

बाल्कन युद्धों का जन्म हुआ । युवा तुर्को की अनुसार नीतियों के कारण ही मान्टीनीग्रो बल्गेरिया यूनान एवं सिर्बिया ने तुर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । इटली ने ट्पोली पर अधिकार कर लिया ।

वास्तव में इस युवक क्रान्ति ने पूर्वी समस्या से सम्बन्धित सभी समस्याओं को पुन: जागृत कर दिया और उसके परिणाम स्वरूप घटनाओं का ऐसा क्रम आरम्भ हुआ, जिनके कारण 6 वर्ष बाद ही प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हुआ ।

इस आन्दोलन ने विश्व की सम्पूर्ण राजनीति को प्रभावित किया है इसीलिये इतिहासकार हेजन ने युवा तुर्क आन्दोलन टर्की को और यूरोप के इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना माना है।

18.11 आन्दोलन के बाद टर्की

1911 से अनवरत युद्धों ने टर्की को विनाश के कगार पर ला खड़ा किया । प्रथम महायुद्ध में टर्की धुरी राष्ट्रों के पक्ष में लड़ा और बहुत बुरी तरह पराजित हुआ । 10 अगस्त 1920 को मित्र राष्ट्रों से सेब्र की संधि की । जिसके अनुसार सम्पूर्ण गैर तुर्की जनसंख्या की प्रभुसत्ता मित्र राष्ट्रों को समर्पित की । प्रथम महायुद्ध के बाद टर्की में राष्ट्रवाद आन्दोलन प्रारम्भ हुआ । यहीं से उसका राष्ट्रीय राज्य के रूप में इतिहास आरम्भ हुआ । 4 जुलाई 1923 को टर्की व यूनान की समस्या के समाधान के लिये लोसाने की संधि की गयी ।

यदपि टरकी ने पहले भी यूरोपीय शक्तियों की सफलता पूर्वक अवहेलना की फिर भी अपने देश को विदेशी प्रभाव से मुक्त करने के उपरान्त मुस्तफा कमाल ने टर्की का आधुनिकरण किया । साम्राज्य के व आर्थिक दोनों के क्षेत्र में सुधार किये सुल्तान और सलीफा का पद समाप्त करके टर्की को गणतन्त्र घोषित कर दिया । राज्य में सभी धर्मों की समानता को मान्यता दी गयी । स्त्रीयों को अधिकार दिया गया । कृषि व उद्योग के विकास हेतु कुछ विशेष विभाग गठित किये गये । आर्थिक ढांचे का पुनगर्ठन किया गया । अनेक उघोगों का राष्ट्रीयकरण किया गया । औघोगिक विकास के लिये 1934 में एक पंच वर्षीय योजना भी लागू की गयी ।

18.12 सारांश

इस इकाई को पढने के बाद आपने जाना कि टर्की साम्राज्य का उद्भव किस प्रकार हुआ और यूरोप के विशाल आटोमन साम्राज्य की स्थापना हुई ।

टर्की के सुल्तान अब्दुल मजीद ने सुधार योजना लागू की परन्तु रूढ़िवादियों के विरोध के कारण उसे सफलता मिली ।

टर्की को पड़ौसी बाल्कन राष्ट्रों से निरन्तर संघर्ष करना पड़ा ।

टर्की पर सही प्रभाव को रोकने और टर्की के अस्तित्व की रक्षा के लिये यूरोपीय राज्यों ने सक्रिया हस्तक्षेप किया

टर्की विदेशी प्रभाव से बचाने एवं सुधार योजनाएं लागू करने की दृष्टि से टर्की के युवकों ने आन्दोलन किया जो कि युवा तुर्क आन्दोलन के नाम से जाना जाता है।

युवा तुर्की ने अनेक सुधार योजनाएं प्रस्तावित की । परन्तु दृढ़ता में कमी, जातीय कट्टरता के जन सहयोग के अभाव में उन्हें सफलता नहीं मिली ।

युवा तुर्क आन्दोलन ने -विश्व के सम्पूर्ण घटना क्रम को प्रभावित किया ।

18.13 बोध प्रश्न

1. युवा तुर्क क्रान्ति से पूर्व टर्की में सुधार कार्यो को वर्णित करिये ।
2. यूनान व टर्की के मध्य संघर्ष की जानकारी दीजिये ।
3. युवा तुर्क आन्दोलन क्या थे इस आन्दोलन के कारणों का विश्लेषण करिये ।
4. युवा तुर्क आन्दोलन के संगठन व समितियों की जानकारी दीजिये ।
5. युवा तुर्क क्रान्ति के विभिन्न कार्यक्रमों का वर्णन करिये ।
6. उन परिस्थितियों का विश्लेषण करिये जिनके कारण युवा तुर्क आन्दोलन सफल नहीं हुआ ।
7. युवा तुर्क आन्दोलन का टर्की व विश्व पर क्या प्रभाव पड़ा ।

18.14 संदर्भ ग्रन्थ:-

1. जी. पी गूच- आधुनिक यूरोप का इतिहास
2. एस.बी.फे- आरीजन्स ऑफ दी वार
3. लुइगअलबर्टिनी: आरीजन्स ऑफ दी वार ऑफ 1914.
4. एफ. जी. बेन्स- "योरोपीयन हिस्ट्री सिसं 1870"
5. सी.डी.एम. केटल्वी- "आधुनिक काल का इतिहास
6. सी.डी.हेजन-मार्डन यूरोपीयन हिस्ट्री (हिन्दी संस्करण)
7. गिब्बन्स- "न्यू मैप ऑफ यूरोप"
8. जे.ए.आर. मेरियट- "दी ईस्टर्न क्यशचन"
9. के.एल. खुराना- एशिया का आधुनिक इतिहास
10. देवेन्द्र सिंह चौहान- यूरोप का इतिहास
11. लिप्सन- "यूरोप इन नाइन्टीन्थ एण्ड टूवन्नियत सेन्चुरी"
12. एच.ल्युक- मेंकिग ऑफ माडर्न टर्की
13. व्हाइने- "आटोमन एम्पायर इट्स रिकार्ड एण्ड लीगेसी ।

इकाई-19
अमेरिका में काले लोगों का इतिहास

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 अमेरिका की खोज, वहाँ के मूल निवासी तथा वहाँ जाकर बसने वाले आरम्भिक यूरोपवासियों के उद्देश्य ।

19.3 काले लोगों को दास-बनाकर अमेरिका ले जाने के उद्देश्य ।

19.4 काले लोगों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति 1830 तक ।

19.5 काले लोगों को दासता से मुक्त कराने के प्रयास ।

19.6 अब्राहम लिंकन का निर्वाचन-दास समर्थक राज्यों का संघ से अलग होना ।

19.7 अमेरिका का गृह-युद्ध; दास प्रथा का अन्त

19.8 सारांश

19.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे:

- अमेरिका की खोज, वहां जाकर यूरोपवासी क्यों बसे ।
- औपनिवेशिक काल-जिसमें विश्व की अनेक संस्कृतियों का मेल-मिलाप हुआ ।
- काले लोगों को वहां पहुंचाने का लाभ-प्रद व्यापार क्यों आरम्भ हुआ ।
- अमेरिकी स्वतन्त्रता की घोषणा-काले लोग अब भी स्वतन्त्र नहीं हुए ।
- काले लोगों की दास के रूप में स्थिति ।
- दास-प्रथा को समाप्त करने हेतु प्रयास ।
- लिंकन का निर्वाचित होना- राज्यों का संघर्ष आरम्भ ।
- दास-प्रथा की समाप्ति-काले लोग स्वतन्त्र हुए ।

19.1 प्रस्तावना

सत्रहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ तक के कोई सौ वर्षों तक यूरोप से अमेरिका जाकर वहाँ बसने वाले अप्रवासियों का एक प्रवाह-सा चलता रहा । यह तुफानी प्रवाह इतिहास की उन महानतम घटनाओं में से एक है, जिसमें आबादी का बड़े पैमाने पर स्थानान्तरण हुआ । इस स्थानातरण में सभी देशों से गोरे, पीले, भूरे और काले लोग वहाँ पहुंचे । शक्तिशाली किन्तु विविध प्रयोजनों से प्रेरित इस आन्दोलन के फलस्वरूप एक बियाबान वन्य प्रदेश का एक नये राष्ट्र के रूप में जन्म हुआ । इस राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सभी लोगों ने रंग, जाति, धर्म, रीति-रिवाजों तथा राजनीतिक विचारधाराओं के भेद-भाव को भूलाकर एकजुट होकर कार्य किया । सभी के संयुक्त प्रयास के कारण अमेरिका जो इंग्लैण्ड का एक उपनिवेश

मात्र था, एक स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली देश के रूप में उभरा । यहाँ के लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता की स्वयं घोषणा की । अमेरिका के संविधान में यह घोषणा की गयी थी, कि "सब मनुष्य जन्म से बराबर है", किन्तु यह बात गोरे लोगों पर लागू थी कालों पर नहीं । स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद भी काले लोगों की स्थिति दास जैसी ही बनी रही । सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक अमेरिका में अफ्रीकी नीग्रो दासों को इतनी बड़ी संख्या में लाया गया था कि प्राय: प्रत्येक योरोपीय ईसाई के यहाँ लकड़ी काटने और पानी भरने के लिए एक नीग्रो-दास था । इन काले लोगों को स्वतन्त्रता के अधिकार दिलाने के लिए अमेरिका के उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों के बीच चार वर्ष तक संघर्ष चला । अमेरिका के इतिहास में इसे भाई-भाई का युद्ध, ग्रह-युद्ध; उत्तर तथा दक्षिण का युद्ध आदि कई नामों से पुकारा गया है । इस संघर्ष के अन्त में अब्राहम लिंकन के अथक प्रयासों के कारण 1863 में दास प्रथा की समाप्ति की कानूनन घोषणा की गयी । लिंकन ने अमेरिका का यथार्थ रूप में संयुक्त राष्ट्रीय निर्माण किया, उसने दासता का उन्मूलन कर समाज को नव-ज्योति भी प्रदान की ।

19.2 अमेरिका की खोज, वहाँ के मूल-निवासी, तथा वहाँ जाकर बसने वाले आरम्भिक यूरोपवासियों के उद्देश्य

पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों से अमेरिका का इतिहास आरम्भ होता है । उसके पश्चात वहाँ की गतिविधियां संसार के दूसरे भागों से घनिष्ट रूप से सम्बद्ध हो गई । इस महाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों का नामकरण भी आगन्तुकों के द्वारा ही किया गया । सर्वप्रथम यहां - की धरती पर पहुंचने वाला यूरोपवासी कोलम्बस था, जिसे स्पेन के सम्राट फीर्डनेण्ड और साम्राज्ञी इसाबेला ने 1492 ई0 में प्रोत्साहित कर अन्वेषण कार्य हेतु भेजा था । कोलम्बस ने इस नये प्रदेश को एशिया की मुख्य भूमि के निकट का भाग समझा । वह यह कभी नहीं जान सका । कि उसने एक नये प्रदेश की खोज की है । 1498 तथा 1503 में उसने पुन: इसी मार्ग पर अन्वेषण का कार्य किया, फिर भी अमेरिका का मुख्य भाग उसकी पहुँच से बाहर ही रहा । ब्रिटेन ने सर्वप्रथम अमेरिका के अन्वेषण का कार्य कोलम्बस की सफलता के पश्चात आरम्भ किया । सम्राट हेनरी सप्तम द्वारा नियुक्त जान वेबर ने 1497 तथा 1498 ई0 के अभियानों में न्यूफाउन्डैलैण्ड तथा मेनलेण्ड का अन्वेषण किया, किन्तु उसके पश्चात ब्रिटेन ने अन्वेषणों पर ध्यान देना बन्द कर दिया । ब्रिटेन के पश्चात इटली के अमीरीगों वेस्पूची ने 1499 ई0 में केप केसीपोर के दक्षिणी क्षेत्रों, दक्षिण अमरीकी तटों, अमेजन नदी के उद्गम स्थान एवं ब्राजील के निकट केपड़ी-लाबिला की खोज की । 1507 ई0 में भूगोलवेत्ता मार्टिन वाल्डसीमूलर ने इन प्रदेशों का नाम अमेरिका रखा, क्योंकि इन प्रदेशों की खोज का सर्वाधिकार श्रेय अमीरीगो वेस्पूची को ही था ।

मूल निवासी:- यूरोपीय प्रवासियों और काले निग्रो लोगों के अमेरिका पहुंचने से पूर्व अमेरिकी भूमि पर निवास करने वाले व्यक्तियों का जीवन अभी तक एक रहस्य बना हुआ है । पुरातत्ववेताओं के गहन अध्ययन के बाद भी इनके सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी हैं । कोलम्बस ने अमेरिका के आदिवासियों को "इंडियन्स" कहा है । उसका मानना था

कि वहां रहने वाले पन्द्रह से बीस मिलियन लोग "इन्डियन्स" हैं । इतिहासकार इस संख्या के सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं । उपनिवेश स्थापित करने वाले यूरोपवासियों का यह सौभाग्य था कि अमेरिका के इन आदिवासियों ने इनका अधिक विरोध नहीं किया । ये आदिवासी मुख्यत: शिकार करके अपना जीवन निर्वाह करते थे, अतएव उनके साधन-स्रोत भी बुरी हालत में थे । मेक्सिको के उत्तर में पायी जाने वाली मूल-जातियाँ जो 59 कबीलों में विभक्त थी-अल्पसंख्यक थीं । इनमें सबसे अधिक शक्तिशाली इरोक्वोस (Iroquois) कबीले की पांच आदिम जातियां थीं जिनका गढ़ पश्चिमी न्यूयार्क था । इन लोगों की आक्रमाक नीति के कारण पड़ौसी आदिवासी दूसरे कबीले अलगोनकियान्स (Algonquians) इनसे भय खाते थे । दक्षिण पूर्व में क्रीक जनजाति का सुदृढ़ संगठन था जो मस्कोजियन कबीले के थे । उत्तर-पश्चिम के दूरवर्ती मैदानों में सायक्स के कबीले का कमजोर जातिय संगठन भी अस्तित्व में था । अमेरिकी महाद्वीप के ये आदिवासी विश्व के अन्य भागों से अनभिज्ञ थे । अत: अपनी आत्मरक्षा हेतु वे भाग कर दूसरे स्थानों पर भी नहीं जा सके । यूरोपीय लोगों के आक्रमणों ने इन आदिवासियों को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया या उन्हें दास बना लिया । इस प्रकार अमेरिका में पूर्णत: विदेशी लोगों का ही आधिपत्य रहा ।

आरम्भिक यूरोपवासियों के उद्देश्य:-

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में वर्तमान संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्वीतट पर यूरोपीय लोगों का पहुंचना आरम्भ हो चुका था । अमेरिकी सोने-चांदी की प्राप्ति को लेकर स्पेन और इंग्लैण्ड के मध्य भीषण जलयुद्ध भी हुआ जिसमें स्पेन की पराजय हुई । एलिजाबेथ के समर्थन से इंग्लैण्ड ने अमेरिका में बस्तियां बसाना शुरू कर दियां 1606 में इग्लैण्ड के सम्राट जेम्स प्रथम ने एक संयुक्त स्टाक कम्पनी (Joint Stock Company) को एक आज्ञापत्र प्रदान किया, जिसमें हिस्सेदारों (Shareholder) के दो समूहों का उल्लेख था, एक लन्दनवालों का और दूसरा प्लीमथ वालो का । इन दोनों समुहों को वस्तुत: दो प्रथक कम्पनिया ही माना गया है । इन दोनों कम्पनियों को कुछ निशचित क्षेत्रों में उपनिवेश बसाने एवं व्यापार करने की अनुमति दी गयी । 1607 में कप्तान क्रिस्टोफर न्यूफोर्ट के नेतृत्व में 120 अंग्रेजों ने वर्जीनिया क्षेत्र की जेम्स नदी के किनारे "जेम्स टाउन" नामक बस्ती की स्थापना की । यह अमेरिका में पहली अंग्रेज बस्ती थी जो लन्दन कम्पनी द्वारा स्थापित की गयी थी । प्रथम सात महिनों में खाद्य पदार्थों की कमी ओर बीमारी के कारण वहीं पर रहने वाले 105 व्यक्तियों में से 73 की मृत्यु हो गई । जेम्स टाउन के प्रबन्धकों की अकुशलता, इन्डियन्स के आक्रमण और प्रतिकूल जलवायु के कारण वहां अगले दस वर्षों तक विशेष प्रगति नहीं हो सकी । फिर भी तम्बाकू की व्यापारिक सम्भावनाओं ने शेष लागों को वहां रहने की प्ररेणा प्रदान की । जेम्स टाउन से सबसे पहले तम्बाकू से लदा जहाज 1614 ई0 में इंग्लैण्ड पहुंचा । 1622 ई0 में रेड इण्डियन्स के एक अन्य आक्रमण में लगभग 350 अंग्रेज मारे गये, जिससे वर्जीनिया में निराशा फैल गयी। अत: 1624 ई0 में इंग्लैण्ड के सम्राट ने लन्दन कम्पनी के अधिकारों को समाप्त करने की घोषणा की । इस समय से वर्जीनिया सम्राट द्वारा शासित उपनिवेश बन गया । सम्राट द्वारा नियुक्त प्रथम गर्वनर सर विलियम बर्कले (Sir William Berkeley) था ।

जैम्स टाउन में स्थापित प्रथम उपनिवेश की स्थापना के 150 वर्षों में अमेरिका में अटलान्त महासागर के तट पर मेन से लेकर जार्जिया (इंग्लैण्ड का अन्तिम उपनिवेश 1753 ई.) तक एक सहस्त्र मील के विस्तृत प्रदेशों में उसके तेरह उपनिवेश स्थापित हो चुके थे । ये उपनिवेश थे-न्यू हैम्पशायर, मैसाचुसेटस, रोड आइलैण्ड, कनेक्टिकट, न्यूयार्क, न्यूजर्सी पेन्सिलवेनिया, डेलावेयर, मेरीलैण्ड, वर्जीनिया, उत्तरी केरोलिना, दक्षिणी केरोलिना और जार्जीया । इन उपनिवशों में रहने वाले 90 प्रतिशत अंग्रेंज थे और शेष 10 प्रतिशत में डच, जर्मन, फ्रांसीसी, और पुर्तगाली थे ।

इंग्लैण्ड के अतिरिक्त स्पेन, हालैण्ड, तथा फ्रांस ने भी उतरी अमेरिका में अपने उपनिवेश स्थापित किये थे । किन्तु इन देशों को इंग्लैण्ड की तरह व्यापारियों, सुधारकों, सम्राटों तथा जनता का पूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं हो सका । सामान्य नागरिकों के लिए 5000 कि0 मी0 चौड़े प्रशान्त महासागर को पार करना काफी कठिन कार्य था । लकड़ी के जहाजों में 2-3 महीने की इस यात्रा में अपर्याप्त भोजन, बीमारी, और तूफान से बचकर, कुछ ही लोग अमेरिका पहुंचते थे और वहाँ पहुँचकर भी वहाँ के मूल निवासी रेड इण्डियन्स तथा प्रकृति के कोप का उन्हें सामना करना पड़ता था प्रश्न उठता है कि फिर यूरोपीय लोग यहां आकर क्यों बसे? या इतना कष्ट उठाने के पीछे उनका क्या उद्देश्य था ।

1. यूरोप में निरन्तर होने वाले जन-संहारक युद्धों से मुक्ति की आशा में प्रव्रजन के लिये प्रेरित किया ।

2. निर्धन लोगों को दास बनाकर युद्धों में झोंकने के लिए अमीरो एवं सत्ताधारियों के हाथों बेच दिया जाता था । इससे बचने के लिये उन्होंने उपनिवेशों में बसना उपर्युक्त समझा ।

3. अधिकांश यूरोपीय अप्रवासियों ने अपना घर इसलिये छोड़ा था कि उन्हें वहाँ अधिक आर्थिक लाभ के अवसर मिलेंगें । इस प्ररेणा को बहुधा धार्मिक स्वतन्त्रता की लालसा, अथवा राजनीतिक उत्पीड़न से बचकर भागने के दृढ़ संकल्प ने और भी बल दिया ।

4. धार्मिक तथा साम्प्रदायिक अत्याचार एवं उत्पीड़न से मुक्त होकर स्वतंत्र रूप से ईश्वर की आराधना कर सकेंगें, जहाँ न तो चर्च का दबाव होगा और न ही सरकारी लालफीताशाही का । सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दियों की धार्मिक उथल-पुथल ने भी बहुत से लोगों को अपना देश छोडने के लिये विवश किया । 1600 ई0 में इंग्लैण्ड की साम्राज्ञी एलिजाबेथ ने इंग्लैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म के स्थान पर एंग्लिकन चर्च की स्थापना की, स्टुअर्ट शासकों के शासन-काल में धार्मिक मतभेदों ने गम्भीर रूप धारण कर लिया तथा केथोलिकों के अतिरिक्त प्यूरिटनों ने भी एंग्लिकन चर्च की सत्ता को मानने से इन्कार कर दिया था, अत: लाखों लोगों ने इंग्लैण्ड छोड दिया, वे अमेरिका के उपनिवेशों में जाकर बस गये । न्यू हेम्पशायर से जार्जिया तक जितनी भी बस्तियाँ स्थापित हुई उनकी पृष्ठभूमि में धार्मिक असन्तोष का कुछ न कुछ अंश अवश्य था ।

5. स्वदेश छोड़कर अमेरिका में बसने का एक अन्य कारण राजनीतिक था चार्ल्स प्रथम कें शासन काल में स्टुअर्ट वंश समर्थक गृह-युद्ध में पराजित होकर अमेरिका चले गये । जर्मन राजाओं की निरंकुशता ने भी बहुत से जर्मनों को उपनिवेशों में बसने को प्रेरित किया ।

6. भूमिहीन कृषकों की संख्या में वृद्धि के कारण, इंग्लैण्ड में भिखारियों की संख्या बढ रही थी, इसके साथ ही अपराधियों की संख्या में भी वृद्धि हो रही थी । अत: ब्रिटिश सरकार ने ऐसे भिखारियों एवं अपराधियों को अमेरिका भेजना उचित समझा ।

7. कई सरकारी कर्मचारियों, अधिकारियों तथा सैनिकों ने उच्च पद प्राप्ति के लाभ को देखते हुऐ उपनिवेशों में बसना उचित समझा ।

इस प्रकार उपर्युक्त कारणों से प्रभावित होकर ये विदेशी अमेरिका में बसने के लिये प्रेरित हुए । इनमें मुख्यत: इंग्लैण्ड निवासी थे, किन्तु धीरे-धीरे डच, स्पेन, फ्रांस, पुर्तगाल, हालैण्ड आदि देशों के यूरोपीय लोगों ने भी अपने उपनिवेश वहाँ स्थापित किये । अमेरिका में बसने वाली ये जातियाँ यूरोप के विभिन्न भागों से आयी थी, अत: यह स्वभाविक ही था कि उनका सामाजिक जीवन, धार्मिक विश्वास रहन-सहन का स्तर, रीति-रिवाज, परम्पराएं एवं राजनैतिक विचार परस्पर भिन्न होते । इस समाज का जब तक अमेरिकीकरण हुआ, तब तक इसके सदस्य आपसी विरोध, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, प्रतिस्पर्धा और अनावश्यक विवादों में उलझे रहे । इस विभिन्नता के कारण ही सी0 वी0 डोरेन ने लिखा है "अमेरिका ऐतिहासिक रूप से एक उपनिवेश है, जिसका मातृ देश संसार हैं ।"

19.3 काले लोगों को दास बनाकर अमेरिका ले जाने के उद्देश्य

कोलम्बस द्वारा खोजी गई इस नई-दुनिया की ओर लोगों का ध्यान धीरे-धीरे आकर्षित होने लगा था । आर्थिक उन्नति और धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के उद्देश्य की पूर्ति हेतु अधिक से अधिक यूरोपवासी अमेरिका में बसने हेतु प्रेरित हुए । अमेरिका के 3, 15, 065 वर्ग मील के लम्बे-चौडे भू-भाग पर विकास की सम्भावनाएँ अधिक थी, किन्तु 5,000 कि.मी. चौडे प्रशान्त महासागर को पार कर वहाँ पहुंचना कठिन कार्य था । अत: आरम्भ में साहसिक व्यक्ति ही वहाँ पहुंच पाये । वहाँ इस समय शारीरिक श्रम करने वालों की अधिक आवश्यकता थी । वहाँ के अधिकांश आदिवासी या तो संघर्ष में मारे जा चुके थे या उन्हें गुलाम बनाकर इस काम में लगाया जा चुका था, किन्तु परिस्थितियों को देखते हुये यह महसूस किया गया कि अमेरिका के इन नये उपनिवेशों में शारीरिक श्रम करने वाले लोगों की अधिक आवश्यकता है । यूरोप के देशों से यदि श्रमिकों को अधिक संख्या में लाया जाता तो उन्हें लाने तथा अधिक वेतन देने के कारण लाभ की अपेक्षा हानि अधिक होती । अत: अफ्रिका के हब्सी लोगों को दास बनाकर अमेरिका लाया जाना उचित समझा गया । अफ्रीका के नीग्रो जाति के काले लोग शारीरिक रूप से हष्ट-पुष्ट होते थे तथा कठिन से कठिन कार्य करने की क्षमता भी रखते थे तथा इन पर होने वाला खर्च भी बहुत कम था । आरम्भ में अफ्रीका के इन काले लोगों को अमेरिका में व्यक्तिगत स्तर पर लाया गया था, किन्तु सोलहवीं शताब्दी के अन्त में अफ्रीका के दासों को अमेरिका में लाकर बेचने का कार्य आरम्भ हो गया । इन काले लोगों से जंगल साफ करने, खेती करने, सड़क बनाने आदि का कार्य करवाया जाता था । इस तरह की गुलामी या दासता की प्रथा अमेरिका में उसकी स्वतन्त्रता प्राप्ति के दो सौ वर्ष पहले ही आरम्भ हो चुकी थी । सर्वप्रथम ज्ञात व्यापारी वार का डचमेन (Dutchman of warre) था, जिसने जैम्स टाउन में

बीस अफ्रीकन हब्ली दास बेचे थे । सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक अमेरिका में अफ्रीकी नीग्रो दासों को इतनी बड़ी संख्या में लाया गया था कि प्राय: प्रत्येक यूरोपीय ईसाई के यहां लकडी काटने तथा पानी भरने के लिए एक नीग्रो दास था । अफ्रीकियों को अमेरिका ले जाकर गुलामों की तरह बेच देने का यह धन्धा लाभकारी था । इस प्रकार गुलामों का व्यापार बढ़ा और इसमें अंग्रेजों, स्पेनियों, और पुर्तगालियों ने व्यापार की तरह धन कमाया । गुलामों के व्यापार के लिए विशेष प्रकार के जहाज बनाये जाने लगे । गुलामों के व्यापार की नींव पर लिवरपूल बहुत बड़ा शहर बन गया । 1730 में लिवरपूल के पन्द्रह जहाज इस धन्धे में लगे हुए थे, यह संख्या 1792 में बढ़कर 132 हो गयी थी । एक नवयुवक नीग्रोदास 40 पौण्ड तक प्राप्त हो जाता था । यद्यपि 1771 में इंग्लैण्ड ने दास-प्रथा की समाप्ति की घोषणा कर दी थी, किन्तु इस लाभदायक व्यवसाय को रोकने के लिए कोई महत्वपूर्ण कदम नहीं उठाया गया ।

यही प्रश्न उठता है कि अमेरिका में इतनी अधिक संख्या में नीग्रो-दासों की मांग उतोत्तर क्यों बढ़ती गयी ।

1- औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ होने से लंकाशायर में रुई की कताई का उद्योग बहुत उन्नति कर रहा था, वहां खपने वाली रूई अमेरिका के दक्षिणी राज्यों के बड़े-बड़े कपास बागानों से आती थी । इन बागानों में खेती का कार्य इन दासों द्वारा ही होता था । अत: वहां दासों की मांग बढ़ती गई ।

2- दक्षिणी अमेरिका में कपास के अतिरिक्त गन्ना, तम्बाकू की खेती भी बड़े पैमाने पर होती थी, जिनमें दास मजदूर के रूप में कार्य करते थे । इस समय तक कृषि के लिए उपर्युक्त व यान्त्रिक शक्ति से संचालित होने वाले यन्त्रों का आविष्कार नहीं हुआ था अत: शारीरिक श्रम करने वालों की अधिक आवश्यकता थी ।

3- अमेरिका पहुंचने वांले अधिकांश यूरोपवासी व्यापार में लाभ कमाने के उद्देश्य से वहां गये थे । कोई भी यूरोपवासी श्रमिक का कार्य नहीं करना चाहता था, अत: मजबूरन श्रमिक के कार्य हेतु नीग्रो दासों पर निर्भर रहना पड़ता था ।

उपर्युक्त कारणों से दास-व्यापार धीरे-धीरे बढता गया, जिससे अमेरिका में इनकी संख्या में तेजी से बढ़ोतरी हुई । 1700 ई0 में इनकी संख्या 20 हजार थी जो 1763 में बढ़कर चार लाख तक हो गयी । इनमें से लगभग एक लाख 25 हजार अकेल वर्जीनिया में और 70 हजार केरोलिना के बागानों में ही कार्य करते थे । 1790 तक लगभग 60 लाख दास अमेरिका पहुंच चुके थे ।

19.4 काले लोगों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति 1830 तक

अमेरिका पहुंचने वाले प्रत्येक यूरोपवासी के समक्ष केवल दो ही लक्ष्य थे- प्रथम धार्मिक स्वतन्त्रता और दूसरा सुखमय जीवन । अत: उनका समस्त कार्य कलाप इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहा । किन्तु अमेरिका पहुंचने वाले काले लोगों के समक्ष कोई लक्ष्य नहीं था । उन्हें तो दास बनाकर वहां बेचा गया था अत: उन्हें तो वे सभी कार्य करने थे जो उनके मालिकों द्वारा उन्हें सौंपे जाते थे । अमेरिका में शारीरिक श्रम करने वालो की कई श्रेणियाँ थी- प्रथम श्रेणी उन

लघु कृषकों की थी जो श्वेत दास अनाथ और भिखारी होते थे, वे खेतों में मजदूरी का काम करते थे, इन्हें केवल सीमित मजदूरी प्राप्त होती थी जिससे किसी प्रकार उनका गुजारा हो जाता था । दूसरा वर्ग श्रमिक संयुक्त दल का था जिसमें कई परिवार एक साथ मिलकर श्रम का कार्य करते थे, इनका काम था-काठ के लट्ठो को काट कर लाना, खेतों से फसल काटना, मकानों और झोपडियों तथा खलिहानों का निर्माण करना इत्यादि । इन्हें हम ठेके के श्रमिक कह सकते हैं । इनमें ऐसे अपराधी, जिन्हें यूरोप में मृत्यु दण्ड अथवा आजीवन कारावास दिया गया था होते थे । इनका जीवन भी सामान्य ही था । तीसरे प्रकार के श्रमिक श्रेणी में ऐसे लोग आते थे जो स्वेच्छा से यात्रा व्यय से निपटने के लिए निश्चित अवधि के लिए श्रमिक बने थे, इनमें गौर वर्ण तथा स्यामवर्ग दोनों ही श्रेणी के लोग सम्मिलित थे ।

चौथे प्रकार के श्रमिक थे-नीग्रो जाति के लोग, ये दास कहलाते थे । अन्य वस्तुओं के समान इनका भी व्यापार होता था । जिस समय खुले बाजार में दासों की बोली होती और उनकी निलामी की कीमत पुकारी जाती थी, उस समय का हृदय-विदारक दृश्य बहुत से लोगों से देखा भी न जाता था क्योंकि उस निलामी के फलस्वरूप कई परिवार सदैव के लिए तितर-बितर हो जाते थे । जिस प्रकार दासों ने यूनान को समृद्धिशाली बनाया, लगभग उसी प्रकार अमेरिकी उपनिवेशों को भी दासों ने ही धन्य-धान्य से परिपूर्ण किया । मेहनत में इनकी समता कोई नहीं कर पाता था और कष्ट सहन करने में तो ये अद्वितीय थे । परन्तु इनका कभी भी अपने स्वामियों की सहानुभूति प्राप्त न हुई । इनके साथ पशुओं से भी बदतर व्यवहार किया जाता था, कोड़ों से मारा भी जाता था । दास आजीवन दास ही बना रहता था और उसकी संतान पीढ़ी-दर-पीढ़ी परतन्त्र ही रहती थी । दासों को किसी प्रकार के भी अधिकार प्राप्त नहीं थे । यहाँ तक कि वे अपने स्वामियों की अनुमति के बिना विवाह भी नहीं कर सकते थे । भाग जाने पर दासों को और अधिक कठोर दण्ड दिया जाता था । दासों की कोई निजी सम्पत्ति नहीं हो सकती थी । कई सम्पन्न बागान-मालिको के यहां दासों की स्थिति अच्छी थी, उनके साथ सद्व्यवहार किया जाता था, उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध भी किया जाता था । सम्भवत: इसका कारण दक्षिणी बागान व्यवस्था में उनकी उपयोगिता हो सकती थी । दक्षिणी अमेरिका में दास-प्रथा समाज की एक आवश्यकता बन गयी थी, किन्तु दासता की बेड़ियो से मुक्ति की आशा सम्भव नहीं थी । सात नीग्रो दासों का एक स्थान पर एकत्रित होना भी अपराध था । वर्जीनिया ने तो 1661 ई0 में ही नीग्रो दास-प्रथा को कानूनी मान्यता प्रदान कर दी थी । अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा में निहित सिद्धान्त दास-प्रथा की जड़ों को आघात करते थे, फिर भी यह प्रथा जीवित रही । उत्तरी अमेरिका के लोगों ने दासता विरोधी अभियान चलाया और घोषणा-पत्र को सार्थक बनाने के लिए समस्त अमेरिकी राज्यों से आग्रह किया, किन्तु दक्षिणी अमेरिका में दास-प्रथा जन जीवन में घुल चुकी थी अत: यहाँ के दास स्वामियों ने दास-विरोधी भावनाओं का तिरस्कार किया । दक्षिण के लोग दासों को अपनी निजी सम्पति मानते थे । इस प्रकार दासता का प्रश्न अमेरिका की राजनीतिक क्षितिज पर 1830 तक उभर चुका था, किन्तु इस प्रश्न को हल करने का कोई ठोस प्रयास नहीं किया गया ।

19.5 काले लोगों को दासता से मुक्त कराने के प्रयास

अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा के समय सभी राज्यों में दास-प्रथा का प्रचलन था, केवल मैसाचुसेटस का राज्य इस संबध में अपवाद था । स्वतन्त्रता की घोषणा में कहा गया था कि विधाता द्वारा सभी मनुष्य समान बनाये गये हैं तथा सभी सरकारें अपनी यथोचित शक्तियां शासितों की सम्मति से ही प्राप्त करती है । इस प्रकार की घोषणा द्वारा मानव-अधिकारों में विश्वास प्रकट किया गया और उनकी अभिपुष्टि की गई । इसके साथ-साथ वंशानुगत अधिकारों, असमानताओं तथा निरंकुश सरकारों का खण्डन भी किया गया । किन्तु यह कहना कठिन है कि उक्त स्वतन्त्रता का अधिकार दासों पर लागू होता था या नहीं । परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि 18 वीं शताब्दी के अन्त में अमेरिका के आम लोग दास व्यापार को बुरी नजरों से देखने लगे थे । उत्तरी अमेरिका में तो दास-व्यापार समाप्त कर दिया गया था । दास-प्रथा उत्तर में पेन्सिलेवेनिया की दाक्षंली सीमा तक बन्द हो गई । इस सीमा रेखा को मेसन-डिक्सन सीमा (Mason-Dixon-Line) कहा जाता था । एलीगनीज के पश्चिम के नए प्रदेश में एक ओर ओहियो नदी के उत्तर में दास-व्यापार 1787 के एक अध्यादेश द्वारा बन्द किया जा चुका था । दक्षिणी अमेरिका में भी दास व्यापार धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा था, किन्तु दक्षिण में यह कार्य कानून द्वारा न होकर व्यक्तियों के हृदय परिवर्तन द्वारा पूरा हो रहा था । जार्ज वाशिगंटन जैसे जमींदारों ने स्वयं ही दासों को मुक्त कर दिया और जैफरसन ने एक ऐसी योजना तैयार की थी, जिसके अनुसार कुछ दासों को तो अमेरिका से चले जाने पर मजबूर किया जाता और कुछ को धीरे-धीरे मुक्त कर दिया जाता । कई राज्यों में धीरे-धीरे करके दास-व्यापार को बन्द कर दिया था, किन्तु संघीय आदेश के रूप में दास व्यापार 1808 से पहले बन्द नहीं किया जा सका । किन्तु एली व्हिटने (Eli Whiteney) ने जब कपास ओटने की मशीन (gin) का आविष्कार किया और उसके साथ-साथ जब रूई की पैदावार बढ़ी तो दास-व्यापार का महत्व बढ गया । अब दक्षिणवासी दास-प्रथा को इतना हितकर समझने लगे कि वे इसकी रक्षा के लिए एक दृढ समुदाय के रूप में संगठित हो गये । इस परिवर्तन के अनेक कारण थे, किन्तु नेविन्स और कौमेगर के अनुसार "सबसे बड़ी बात यह थी कि कुछ नये आर्थिक पहलुओं ने दास-प्रथा को 1790 के पहले की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभकारी बना दिया था । जिसे पहले आवश्यक बुराई समझा जाता था, उसे अब इतना आवश्यक समझा जाने लगा कि वह बुराई ही नहीं रही ।" इस आर्थिक परिवर्तन का प्रमुख कारण रूई, गन्ना और तम्बाकू सम्बन्धी विशाल उद्योगों का तेजी से विकसित होना था ।

मिसूरी समझौता

उत्तर और दक्षिण के बीच तनाव की गम्भीर स्थिति उस समय उत्पन्न हुई, जब मिसूरी प्रदेश ने 1819 में संयुक्त राज्य की सदस्यता के लिए आवेदन पत्र दिया । मिसूरी एक दास-प्रथा समर्थक राज्य के रूप में प्रवेश चाहता था, किन्तु ज्यो-ज्यों उत्तर का स्वतंत्र समाज और दास-समर्थक समाज पश्चिमी की ओर बढ़ता गया, यह वांछनीय लगा कि दोनों के मध्य सन्तुलन रखा जाए । "1818 में 10 दास-प्रथा वाले और 11 मुक्त राज्य थे । अलाबामा को

दास राज्य के रूप में प्रवेश देने पर पहले ही सहमति हो चुकी थी । इस प्रकार दास-प्रथा वाले राज्यों और मुक्त राज्यों की संख्या ग्यारह-ग्यारह थी, जिससे दोनों पक्षों में सन्तुलन बना हुआ था । इस स्थिति मे मिसूरी के प्रवेश का प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गया । क्योंकि इसका प्रवेश होने पर प्रान्तीय सन्तुलन समाप्त हो जाता और विशेषकर सीनेट में एक पक्ष अधिक शक्तिशली बन जाता । दक्षिण के लिए इस सन्तुलन को बनाये रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गया, क्योंकि प्रतिनिधि सभा में उत्तर का बहुमत पहले से ही था । 1820 में प्रतिनिधि सभा में मुक्त राज्यों के 123 और दास प्रथा वाले राज्यों के 89 प्रतिनिधि थे । ऐसी स्थिति में दास-प्रथा वाले दक्षिणी राज्यों को भय था कि यदि प्रान्तीय सन्तुलन बिगड़ गया और मुक्त राज्यों की संख्या बढ गई तो सीनेट में भी उनका बहुमत हो जायेगा । इस स्थिति में मुक्त राज्य दास-प्रथा को समाप्त करने के लिए भी कानून बना सकते थे । अन्ततः 1820 में इस गतिरोध को एक समझौते द्वारा समाप्त किया गया । इसमें हेनरी क्ले ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी । इसके अनुसार मिसूरी को दास-प्रथा समर्थक राज्य के रूप में प्रवेश दिया गया । किन्तु उसी समय मैन (Maine) को भी एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में प्रवेश दिया गया । इस समय तक मैंन मैसाचुसेटस राज्य का ही एक अंग था । इस प्रकार दास-समर्थक राज्यों और मुक्त राज्यों की संख्या समान रूपेण 12-12 हो गई और प्रान्तीय सन्तुलन भी स्थापित हो गया ।

तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में यह समझौता सभी पक्षों के लिए समान ढंग से न्यायपूर्ण था, किन्तु दोनों पक्षों के उग्रवादियों ने इसे एक "गन्दा सौदा" (Dirty Bargain) बताया ओर इसकी आलोचना की । यद्यपि यह समझौता अगले 34 वर्षों तक कायम रहा । 1830 के बाद दासता का प्रश्न एक राष्ट्रीय समस्या के रूप में उभरा । साहित्यिक प्ररेणा ने भी दासता के प्रश्न को उभारा । हिटियर लौवेल, ब्राएण्ट, एमर्सन और लौंगफेलो जैसे कवियों ने दासता के विरूद्ध धृणा के भाव प्रभावशाली रूप से प्रकट किये । समाचार-पत्रों के माध्यम से दास-प्रथा के अत्याचार, दमन, क्रूरता, अमानवीयता आदि को प्रचारित किया जाने लगा । 1840 ई0 तक अमेरिकी दास-विरोधी समाज की दो हजार शाखाएं तथा उसके लगभग दो लाख सदस्य हो गये थे । किन्तु दक्षिणी अमेरिका के लोगों ने मुक्ति आन्दोलन वालों को बाहर निकाल दिया । वहा समाचार-पत्रों अथवा सार्वजनिक सभाओं में दासता का विरोध करना भी खतरनाक था । दास समर्थकों का कहना था कि प्रत्येक समाज में किसी न किसी वर्ग को शारीरिक श्रम करना होता है, जो श्रम से विमुख न हों । ऐसी स्थिति में अमेरिका के समाज में से किसी को उत्तरी श्रमिक आश्रित समाज अथावा दक्षिणी दास आधारित समाज में से किसी एक को प्राथमिकता देनी होगी । दोनों में से दासता, इनके तर्क के अनुसार अधिक सुरक्षित एवं स्थायी संस्था थी । क्योंकि दास-प्रथा में श्रमिक संगठनों, हड़तालों तथा जातिवादी वर्गभेद का भय नहीं था । इसके साथ ही साथ उत्तरी उत्पादकों के विपरीत दक्षिणी दास मालिक अपने दासों को अधिक सुविधा प्रदान करते थे । इस मनोवृति तथा तर्कों के आधार पर दक्षिणी अमेरिकियों ने दास-प्रथा को आवश्यक बतलाया ।

उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों के बीच दास-प्रथा को लेकर, जो मतभेद उभरे उन्हें सुलझाने के कई प्रयत्न भी किये गये । सीनेटर हेनरी क्ले ने कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखे । सितम्बर, 1850 में कांग्रेस ने इस संबध में पाँच कानून बनाये ।

1- केलिर्फोनिया को संयुक्त राज्य में एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में शामिल किया गया ।

2- कोलम्बिया जिले में दास-व्यापार समाप्त कर दिया गया ।

3- एक नया और कठोर "भगोड़े दास कानून (Fugitive Slave Law) बनाया गया । तदनुसार राष्ट्रीय सरकार के कार्यकारी अभिकरणों को दास-स्वामियों के अधीन रख दिया गया ।

4- उटा (Utah) को एक प्रदेश के रूप में संगठित किया गया ।

5- न्यू-मेक्सिकों को एक प्रदेश के रूप में संगठित किया गया । टेक्सास को राष्ट्रीय सरकार द्वारा एक करोड डालर का भुगतान करने को कहा गया, ताकि न्यू मेक्सिकों के प्रदेश पर वह अपना दावा छोड दें ।

उपरोक्त समझौते के अन्तर्गत केलिर्फोनिया के अतिरिक्त मेक्सिकों से प्राप्त सभी प्रदेश न्यू-मेक्सिकों और उटा प्रदेश के रूप में संगठित किये गये । यह कहा गया कि जब ये प्रदेश राज्य बन जाए तो दास-प्रथा के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय यहां के निवासियों द्वारा ही लिया जाए ।

भगोडे दासों से सम्बन्धित अधिनियमि का उत्तरी राज्यों के बुद्धिवादियों तथा मानवतावादियों ने विरोध किया और इसे ईसाई सिद्धान्तों तथा अमेरिकी आदर्शों के विरूद्ध माना। भगोंडे दास कानून के उत्पीडन से श्रीमती हैरियट बीचर स्टोवे (Mrs. Harriet Beecher) को 'अंकित टाम्स केबिन' (Uncle Tom's Cabine) नामक उपन्यास लिखने की प्ररेणा मिली, जिसमें दास-प्रथा का इतना सटीक चित्रण किया गया था कि उत्तर और दक्षिण के लोगों में इस प्रथा की वीभत्सताओं के प्रति घृणा व्याप्त हो गयी । इस पुस्तक ने अमेरिका में दास-प्रथा के विरूद्ध भावना को उत्पन्न करने में जो कार्य किया, वह हजारों सभाओं, व्याख्यानों व पुस्तिकाओं द्वारा भी नहीं हुआ था । अभी तक दासता को अभूर्त तर्कों द्वारा बुरा बताया जाता था किन्तु इस उपन्यास के पात्रों ने उसे साकार रूप प्रदान किया । रिचार्ड करेन्ट तथा अन्य ने 1850 के समझौते को उत्तर तथा दक्षिण के बीच "अल्पकालीन शान्ति" संधि कहा है।

केन्सास-नेब्रांस्का अधिनियम:-

1850 के समझौते के अधिकांश प्रस्ताव स्टीफन डगलस की सूझ थी, क्ले ने तो उन्हें स्वरूप प्रदान किया था । इस समझौते से मानों सभी विवादों का अन्त हो गया, किन्तु यह समझौता तीन वर्षों तक ही प्रभावी रहा । विग तथा डेमोक्रेट दलों में से बहुमत ने इसका समर्थन किया था, फिर भी भीतर ही भीतर असन्तोष की आग धधक रही थी भगोडे दासों को पकडने सम्बन्धी नये कानून से कई उत्तरी लोगों के सम्मान को गहरी ठेस पहुंची थी । उन्होंने भागे हुए दासों को पकड़ने में किसी भी तरह की सहायता देने से इन्कार कर दिया । इसके विपरित दक्षिण के उग्र नेता मिसूरी समझोते को भंग कर सारी उपरी मिसूरी घाटी को दासता के लिए पा लेना चाहते थे । 1854 के एक अधिनियम द्वारा दो नये क्षेत्र राज्य केन्सासा तथा

नेब्रासका की स्थापना का प्रस्ताव किया गया । ये क्षेत्र मिसूरी के उत्तर में थे, तथापि यह प्रस्तावित किया गया था कि दास प्रथा यहां लागू न हो । इससे उत्तर तथा दक्षिण के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी । मिसूरी नदी के नीचे की उपजाऊ भूमि जो नेब्रास्का व कन्सास राज्य में थी बसने वालों को आकर्षित करने लगी थी । इस भू-भाग में होकर चिकागों से प्रशान्त तट तक रेल मार्ग आसानी से बन सकता था । न्यू ओरलियन्स से पश्चिम की ओर बढ़ने वाले रेल मार्ग के लिए यहां दक्षिणी क्षेत्र की सम्भावनाएं भी थी । संघर्ष का मुख्य मुद्दा यह था कि इन नये प्रदेशों को दास समर्थक राज्य के रूप में स्वीकार किया जाए या मुक्त राज्य के रूप में । इस संबंध में स्टीफन डगलस तथा जेर्फसन डेविस के बीच वाद-विवाद भी चला ।

डगलस ने लोकप्रिय प्रभुसत्ता (Popular Sovereignty) के आधार पर यह मत प्रकट किया कि इन नये प्रदेशों के निवासियों द्वारा ही यह निर्णय लिया जाय कि वे दास-प्रथा चाहते है या नहीं । किन्तु जेफर्सन का तर्क था कि कांग्रेस को अमेरिकी नागरिकों के अधिकारों पर जोर देना चाहिये और यदि कोई प्रदेश इन्हें लागू न करे तो कांग्रेस को लागू करना चाहिये । दक्षिणवासियों ने डगलस द्वारा प्रस्तावित इस विधेयक में यह प्रावधान भी शामिल कर दिया कि मिसूरी समझौता अब रद्द हो गया है । इस संबंध में डगलस का वास्तविक उद्देश्य अभी तक विवाद का विषय है । उसके विरोधियों के अनुसार वह अगले राष्ट्रपति चुनाव के लिए दक्षिणवासियों का समर्थन प्राप्त करना चाहता था । राष्ट्रपति पार्थस के समर्थन से यह अधिनियम पारित तो हो गया, किन्तु देश में इसके विरूद्ध चारों और उत्तेजना व्याप्त हो गई । इस विधेयक ने न केवल राजनीतिक दलों को परस्पर विभक्त किया वरन् कैन्सास में गृह-युद्ध को भी उत्पन्न किया ।

इस तनाव पूर्ण स्थितिं में 1856 में राष्ट्रपति के चुनाव हुए और बुचानन राष्ट्रपति बने । उनका समर्थन दक्षिण की ओर था । उनके समय में ड्रेट स्काट नामक व्यक्ति के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण निर्णय दिया, जिसके अनुसार दास अपने स्वामी की सम्पति थे तथा कांग्रेस को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के बिना किसी की व्यक्तिगत सम्पति को छीनने का अधिकार नहीं है ।

इस प्रकार दासता का प्रश्न इस समय तक उग्र रूप धारण कर चुका था । डगलस और प्रशासन की फूट के बाद स्पष्ट हो गया कि दासता के सम्बन्ध में अब तीन दृष्टिकोण थे-

1- रिपब्लिकन दृष्टिकोण के अनुसार संघीय कानून द्वारा दासता को समस्त प्रदेशों से निकाल देना चाहिए और ड्रेड स्काट के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को बदला जाना चाहिए ।

2- दक्षिणी ड्रेमोक्रेट्स की मांग थी कि संघीय कानून द्वारा सभी प्रदेशों में दासता की रक्षा की जानी चाहिये ।

3- स्टीफन डगलस और उसके अनुयायियों का मत था, कि लोकप्रिय संप्रभुता द्वारा प्रदेश की जनता स्वयं निर्णय करे कि वह दासता रखेगी अथवा नहीं ।

लिंकन-डगलस वाद-विवाद

1858 में जब समस्त अमेरिका में वर्गीय भावना जोर पकड़ रही थी उस समय अमेरिका में सीनेट के चुनाव हुए । इलिनोइस राज्य की सीनेट के लिए एक सीट रिक्त थी । निर्वाचन में सीनेट में स्थान प्राप्तकर्ताओं में लिंकन और स्टीफन डगलस थे, जो अपने-अपने दल के प्रतिक थे । चुनाव अभियान में इन दोनों में एक उच्च कोटि की वाद-विवाद श्रृंखला आरम्भ हुई । बाह्य रूप से दोनों का लक्ष्य सीनेट में स्थान प्राप्त करना था, किन्तु वास्तव में यह विवाद अमेरिका में उस समय के मौलिक प्रश्न दास-प्रथा से सम्बन्धित था । डगलस ने राष्ट्रपति बुचानन की केन्सास नीति का विरोध करके अपने आप को उत्तर में लोकप्रिय बना लिया था । लिंकन भी केन्सास-नेब्रास्क कानून का विरोधी था, किन्तु वह संयुक्त राज्य अमेरिका के संघ को किसी भी स्थिति में टूटने से बचाना चाहता था । वह रिपब्लिकन दल का एक प्रमुख वक्ता था । दोनों नेताओं ने इलिनाइस के प्रत्येक कांग्रेस जिले में बड़े जनसमुह के सम्मुख अपने-अपने तर्क प्रस्तुत किये । लिंकन और डगलस का यह वाद-विवाद देश के समाचार-पत्रों में व्यापक रूप से छापा गया । डगलस ने अपने "लोकप्रिय संप्रभुता" के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए रिपब्लिकन्स पर आक्रमण किया । उसने लिंकन पर दोष लगाया कि वह और उसके साथी वर्ग भेद को प्रोत्साहित कर रहे हैं तथा दक्षिण में दासों की स्थिति में हस्तक्षेप कर रहे है । लिंकन ने इस दोषारोपण को गलत बतलाया और डेमोक्रेट्स तथा डगलस को प्रदेशों तथा स्वतन्त्र राज्यों में दासता फैलाने के द्याडयंत्र के लिए दोह्री ठहराया । इन आरम्भिक वाद-विवादों के पश्चात डगलस व लिंकन ने सात सम्मिलित सभाओं में वाद-विवाद किया । लिंकन ने ड्रेड स्काट निर्णय का खण्डन किया तथा उसने डगलस से पूछा कि क्या किसी राज्य क्षेत्र को यह अधिकार है कि दास-प्रथा को अपने क्षेत्र से निषिद्ध कर दे । लिंकन के सीधे प्रश्न का डगलस हां या ना में उत्तर नहीं दे सकता अत: उसने अपने उत्तर में यह कहा कि कोई भी राज्य क्षेत्र दास-प्रथा को कानूनी रूप से निषिद्ध किये बिना ही अपने क्षेत्र से प्रथक रख सकता है तथा ऐसा करने के लिए सम्बन्धित राज्य क्षेत्र को केवल इतना ही करना होगा कि वह दासों की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में पुलिस नियम नहीं बनाये । लिंकन ने एक सभा में कहा था कि जिस घर में फूट हो वह टिक नहीं सकता, मेरा विश्वास है कि यह शासन आधे (लोगों को) दास और आधे (लोगों को) स्वतन्त्र रखकर स्थायी नहीं रह सकता । लिंकन का स्पष्ट मत था कि वह दासता को आगे फैलने से रोकेगा । प्रदेशों में इसका प्रसार नहीं होने देगा और इस प्रकार यह अन्त में स्वयंमेव ही समाप्त हो जायेगी । इस वाद-विवाद के पश्चात डगलस सीनेट के चुनाव में विजयी रहा, लेकिन फ्री पोर्टर वाद-विवाद में अपने उत्तर के कारण दक्षिण में डगलस की लोकप्रियता कम हो गई और वह संयुक्त डेमोक्रेटिक दल के प्रत्यासी के रूप में राष्ट्रपति पद के लिए अपने आपको नामांकित नहीं करा सका । इसके विपरित लिंकन की पराजय होने के उपरान्त भी उसकी सरलता और ईमानदारी के कारण उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी । 1860 ई0 के चुनाव में रिपब्लिकन दल ने लिंकन को अपना प्रत्याशी बनाना ही उचित समझा । इस समय अमेरिकन संघ में 18 स्वतन्त्र राज्य और 15 दास-प्रथा समर्थक राज्य थे ।

19.6 अब्राहम लिंकन का निर्वाचन: दास समर्थक राज्यों का संघ से अलग होना

1860 ई0 के राष्ट्रपति के निर्वाचन में उम्मीदवार के प्रश्न पर डेमोक्रेटिक पार्टी दो भागों में बंट गई थी । एक ओर रूई उत्पादक राज्यों के प्रतिनिधि थे, जो लोकप्रिय सम्प्रभुता का पक्ष ले रहे थे । प्रथम वर्ग ने केन्टकी राज्य के ब्रेकिनरिज को और दूसरे वर्ग ने डगलस को राष्ट्रपति पद के लिए अपना उम्मीदवार घोषित किया । इस फूट के कारण रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार अब्राहम लिंकन को विजय हुई । 4 मार्च, 1861 को लिंकन ने राष्ट्रपति का पद ग्रहण किया । लिंकन के राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने से यह निश्चित था कि दास-प्रथा अब अधिक समय तो जीवित नहीं रह सकेगी । यद्यपि लिंकन ने अपने चुनाव प्रसार में दासता की अपेक्षा दूसरे प्रश्नों को अधिक महत्व दिया था । लिंकन ने एक सभा में कहा था कि "दासता जिस स्थिति में हैं, वह उसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहता । यदि मुझे सारे नैतिक अधिकार और शक्तियाँ भी प्राप्त हो जाएं तो मैं यह नहीं जानना चाहुंगा कि मुझे दास-प्रथा की इस स्थिति का क्या उपयोग करना- है ।" वास्तव में लिंकन के भारी बहुमत से विजयी होने के कारण दक्षिणी राज्यों को यह चिन्ता हो गई थी कि नई सरकार उनकी संस्थाओं तथा विशिष्ट सभ्यता को नष्ट कर देगी । इसी भावना ने दक्षिण के राज्यों को संघ से अलग होने के लिए प्रेरित किया । अनेक दक्षिणी नेताओं ने तो चुनाव से पूर्व ही यह तय कर लिया था कि वे रिपब्लिकन राष्ट्रपति के अधीन संघ में नहीं रहेंगे । इस दिशा में पहला कदम कैरोलिना राज्य द्वारा उठाया गया । उसने 20 दिसम्बर, 1860 को ही संघ से अलग होने की घोषणा कर दी । उसने घोषणा पत्र में कहा था कि उत्तर के तेरह राज्यों ने जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कानून पास किये हैं, वे संविधान के विरूद्ध हैं । साथ ही उत्तरी राज्यों के दास-विरोधी आन्दोलन ने इस व्यक्तिगत सम्पत्ति (दास) को असुरक्षित बना दिया है । साथ ही साथ दक्षिण पर उच्च तटकर लगाकर उत्तरी राज्यों को लाभ पहुंचाने का प्रयास भी किया गया हैं । लिंकन के राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के समय तक दक्षिण के सात राज्य संघ से अलग हो चुके थे । इन राज्यों ने मिलकर 4 फरवरी, 1861 को एक 'दक्षिणी परिसंघ' बनाया । इस प्रकार ज्वालामुखी का विस्फोट सन्निकट था, किन्तु लिंकन कृत-संकल्प था कि संघ को किसी भी कीमत पर बचाना होगा । उसने पद ग्रहण करने के समय कहा था, "संयुक्त राज्य अमेरिका के रूप में, जो संघ स्थापित किया गया था, वह अखण्डनीय और शाश्वत है, उसकी अखण्डनीयता को किसी भी प्रकार नष्ट नहीं होने दिया जायेगा ।" अमेरिकी संविधान निर्माताओं ने किसी राज्य को संघ से पृथक होने का अधिकार स्पष्टत: नहीं दिया था, क्योंकि वे इसे बनाये रखना चाहते थे । लिंकन ने समझौता करने हेतु न्यूयार्क, बोस्टन और फिलाडेलफिया में अनेक सभायें आयोजित की । इनमें दास-विरोधी व्यक्तिव्यों पर रोक लगायी गई और आम सभाओं, अखबारों तथा दूसरे मंचों से दास-विरोधी विषवमन पर प्रतिबंध लगाया गया, ताकि दक्षिणवासी समझौतावादी दृष्टिकोण अपना सके । किन्तु उनके समझौता प्रयास असफल रहे । और वह गृह-युद्ध को नहीं टाल सका । 12 अप्रैल 1861 को जब दक्षिणी कैरोलिना ने सुम्टर के किले पर बम फैंककर संघ के

विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया तो लिंकन के लिए यह आवश्यक था कि वह सशस्त्र हस्तक्षेप द्वारा विघटित संघ की रक्षा करें ।

19.7 अमेरिका का ग्रह-युद्ध दास प्रथा का अन्त

अमेरिका का यह ग्रह-युद्ध 12 अप्रैल, 1861 में आरम्भ होकर 26 मई, 1865 में समाप्त हुआ । अमेरिका के इतिहास में इस ग्रह-युद्ध को दो नामों से लिखा गया है । उत्तरी राज्यों में इसे -महान विद्रोह कहा गया है और दक्षिणी राज्यों में "राज्यों का युद्ध" । हम यहां इसको गृह-युद्ध के नाम से ही लिखेंगे, क्योंकि यह संयुक्त राज्य अमेरिका की घरेलु लड़ाई थी । गृह-युद्ध के लिए कई कारण जिम्मेदार थे, जिनमें आर्थिक असमानता, तथा दास प्रथा मुख्य थे । उत्तरी राज्यों में उद्योगों की प्रधानता थी । वहाँ बड़े-बड़े उद्योगों का विकास तीव्र गति से हो रहा था । इन राज्यों में सूती ऊनी वस्त्र, जूते, चमड़े का सामान, लकडी की वस्तुएं बड़े पैमाने पर उत्पादित होती थी । इन कारखानों में मशीनों की सहायता से कार्य होता था और इनमें आर्थिक उन्नति के लिए दासों का विशेष उपयोग नहीं था । इसके विपरित दक्षिणी राज्यों का आर्थिक जीवन कृषि पर आधारित था । अत: इन राज्यों के किसान अपने खेतों के लिये गुलामों के श्रम पर ही निर्भर थे । दक्षिण में कपास, गन्ना, एवं तम्बाकू की खेती बहुत बड़े पैमाने पर होती थी, जिनमें दास मजदूर के रूप में कार्य करते थे । दक्षिण का समाज पूर्ण रूप से दासों पर निर्भर था । इन्हीं मतभेदों के कारण उत्तर तथा दक्षिण के स्वार्थ जुदा-जुदा थे और उनके बीच 1830 ई0 से ही तटकर एवं चुंगी के मामलों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी । प्रत्येक राज्य अपने-अपने स्वार्थों के कारण संघीय हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करता था । देश दो राजनैतिक दलों में विभक्त था । एक दल हर राज्य की प्रभुता का पक्षधर था, तो दूसरा मजबूत केन्द्रीय सरकार चाहता था । इसी आपसी मतभेद को समाप्त करने के लिए अब्राहम लिंकन ने ग्रह-युद्ध में भाग लेकर संघीय व्यवस्था को मजबूत बनाने का कार्य किया ।

गृह-युद्ध का मौलिक कारण दास-प्रथा थी । दास मालिकों ने इस प्रिय संस्था की रक्षा के लिए राज्य की सम्प्रभुता के प्रश्न पर संविधान की अनेक व्याख्यायें प्रस्तुत की, संघ से अलग हुए और ऐसे कार्य किये; जिनसे उत्तरवासियों के दिल में अविश्वास और रोष पैदा हुआ । लिंकन ने उत्तरी राज्यों की सैनिक शक्ति में वृद्धि कर दक्षिण को पूर्णत: जीत लेने का दृढ़ संकल्प कर रखा था । वह किसी भी कीमत पर संघ को टूटने से बचाना चाहता था । ग्रह-युद्ध के दौरान 1 जनवरी, 1863 को लिंकन ने अनी सुप्रसिद्ध "मुक्ति घोषणा" का एलान किया, जिसके अनुसार सब दास स्वंतत्र कर दिये गए और उन्हें राष्ट्रीय सेनाओं में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित भी किया गया । लगभग एक लाख पचास हजार नीग्रो दास उत्तरी सेनाओं में भर्ती हुए । इस घोषणा ने दक्षिणी राज्यों का मनोबल गिरा दिया । दक्षिणी दास भी उत्तरी दासों के समान स्वतन्त्र होना चाहते थे । अन्त में दक्षिणी सेना ने 9 अप्रैल 1865 को आत्म समर्पण कर दिया, इससे ग्रह-युद्ध समाप्त हो गया । लिंकन ने अमेरिका का यथार्थ रूप में संयुक्त राष्ट्रीय निर्माण किया, दासता का उन्मुलन कर समाज को नवज्योति दी तथा अमेरिकी राजनैतिक तन्त्र को केन्द्रित किया । किन्तु दुर्भाग्य वश अमेरिकी ऐतिहासिक एकता के सृजन

के स्रोत की 14 अप्रैल, 1865 को आकस्मिक हत्या कर दी गयी । किन्तु उसने मर कर भी चिरकालिक प्रान्तीय एवं संघीय राज्यों के अधिकारों के विवाद को सुलझा दिया । उसके प्रयासों से ही गुलामों को भी स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का अधिकार प्राप्त हुआ । संविधान के 14 वें और 15 वें संशोधनों द्वारा मुक्त दासों को अमेरिका की नगारिकता के पूर्ण अधिकार भी प्रदान किये गये । इस प्रकार लिंकन ने अपने राष्ट्रपति काल में विभाजित अमेरिकी राज्यों को संघीय शक्ति के अधीन लाने तथा दास लोगों को स्वतन्त्रता दिलवाने का महत्वपूर्ण कार्य किया ।

19.8 बोध प्रश्न

1- उन अधिनियमों की जानकारी दीजिये जिनके कारण दासता के प्रश्न को हल करने का प्रयास किया गया ।

2- उत्तरी राज्यों और दक्षिणी राज्यों के बीच क्या आर्थिक विषमताऐं थी । 100 शब्दों में उत्तर दें ।

3- निम्नलिखित वाक्यों को पढकर उनके सम्मुख सही या गलत (x) का निशान लगाइये ।

(1) क्या कोलम्बस ने अमेरिका के आदिवासियों को इण्डियन्स कहा था?

(2) 1824 में इंग्लैण्ड के सम्राट ने लन्दन कम्पनी के अधिकारों को समाप्त करने की घोषणा की, क्योंकि सम्राट स्वयं लाभ कमाना चाहता था?

(3) लंकाशायर की कपड़ा मिलों में खपने वाली रूई अमेरिका के दक्षिणी कपास बागानों से आती थी?

(4) अमेरिका में दास-प्रथा अधिक समय तक इस कारण नहीं चल पायी थी कि वहां के दास अधिक अमीर थे?

(5) काले लोगों को दासता से मुक्त करने हेतु अब्राहम लिंकन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

19.9 सारांश

इस इकाई में आपने संयुक्त राज्य अमेरिका में काले लोगों के इतिहास का अध्ययन किया । आपने देखा होगा कि किस प्रकार अफ्रीका के काले नीग्रो लोगों को दास बनाकर अमेरिका के बाजारों में बेच दिया जाता था । जिससे इन दासों के परिवार छिन्न-भिन्न हो जाते थे । दास मालिकों द्वारा दासों के साथ निर्दयता पूर्वक व्यवहार किया जाता था, यहाँ तक की पशुओं से भी बदतर स्थिति दासों की थी । दक्षिण के लोगों ने दासों की मेहनत के आधार पर बड़े-बड़े बागान स्थापित किये थे । वे नहीं चाहते थे कि दास कभी स्वतन्त्र जीवन व्यतित करे । उत्तरी अमेरिका के लोग दास-प्रथा को घृणा की दृष्टि से देखते थे । वे मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर दासों की मुक्ति चाहते थे । अन्ततः अब्राहम लिंकन के अथक प्रयासों के कारण दास मुक्ति की घोषणा की गई । दास मुक्ति के प्रश्न को लेकर अमेरिका के उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों के बीच लगभग चार वर्ष तक गृह-युद्ध चला । अन्ततः उत्तरी राज्यों की विजय हुई और संघीय शक्ति की पुर्नस्थापना की गई, साथ ही काले लोगों को सभी नागरिक अधिकार भी प्राप्त हुए ।

19.9 सन्दर्भ ग्रन्थ की सूची

एडम्स.जे.टी - हिस्ट्री ऑफ दि. अमेरिकन पीपूल्स

एडम्स हेनरी - हिस्ट्री ऑफ दि यूनाईटेट स्टेट्स

एलसुन. एच. डब्लू - हिस्ट्री आफ दि यूनाईटेड स्टेट्स

बेली. टी0 ए0 - ए डिप्लोमेटिक हिस्ट्री आफ अमेरिकन पीपूल्स

कोमेगर एच0 एस0 - संयुक्त राज्य अमेरिका का संक्षिप्त इतिहास (हिन्दी)

करेंन्ट रिचर्ड एन एण्ड अदर्स - अमेरिकन हिस्ट्री-ए सर्वे

फ्रेकलिन, जान होप - फ्राम स्लेबरी टू फ्रीडम

हेनरी बेम्फोर्ड पार्क्स - दि यूनाईटेड स्टेट्स आफ अमेरिका

हारलों आर0 पी0 - दि यूनाइटेड स्टेट्स

हिट्टेंन फ्रान्सेस - अमेरिकी इतिहास की रूपरेखा (हिन्दी)

केटलबी, सी0 डी0 एम0 - ए हिस्ट्री आफ मार्डन टाइम्स

कृष्ण बिहमरी वाजपेयी - संयुक्त राज्य अमेरिका का इतिहास (हिन्दी)

कोल.के.के - एक राष्ट्र: दो शताब्दियां (हिन्दी)

प्लेंट और ड्रमण्ड - अवर नेशन फ्राम इट्स क्रीएशन

रेंडाल जे0 जी0 - दि सिविल वार एण्ड रिकन्टाट्कशन

सक्सेना बनारसी प्रसाद - अमेरिका का इतिहास (हिन्दी)

शर्मा मथुरालाल - अमेरिका का इतिहास

MAHI-02/ISBN13/978-81-8496-261-1